मथुरा की मूर्तिकला

[पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा में प्रदर्शित मूर्तियों का परिचय]

नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी
एम.ए., पी-एच.डी.
संग्रहालयाध्यक्ष

पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा

भूमिका
डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल
अध्यक्ष कला एवं वास्तुकला विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक
मथुरा संग्रहालय, मथुरा
१९६५

प्रस्तुतकर्त्ता
प्रकाशन शाखा
सूचना विभाग, लखनऊ

छाया चित्र
कृष्णदत्त मिश्र

रेखा चित्र
लालजीप्रसाद श्रीवास्तव

मुखपृष्ठ सज्जा
नरेन्द्रनाथ राय

मूल्य
बीस रुपये

मुद्रक
मेहरा ऑफसेट प्रेस,
हास्पिटल रोड, आगरा–३

भूमिका

श्री कृष्ण का जन्म स्थान होने के नाते यमुना के तट पर बसी हुई मथुरा नगरी चिर विश्रुत है। यहां की कलानिर्मिति को देखते हुए इसे भारत का एथेंस कहना युक्ति संगत है। यहां की शिल्पशालाएं लगभग बारह शताब्दियों तक नवीन उत्साह एवं मौलिकता के साथ कार्य कर रही थीं। भारतीय कला के क्षेत्र में मथुरा ने जो विशाल योगदान दिया है, उस ओर ध्यान देने पर मथुरा एक ऐसे महत्त्वपूर्ण विद्या-केन्द्र के रूप में सामने आती है जहां की कलाकृतियां, नयनाभिराम सहजदुर्लभ सौन्दर्य, एवं बहुमुखी व्यंजनाओं से ओतप्रोत रहती थीं।

शुंगकाल से लेकर गुप्तकाल के बीच पनपी हुई मथुरा की कला में पाषाण और मृत्तिका के माध्यम से कई नवीन प्रयोग किये गये। यहां संस्कृति, धर्म और कला की कई त्रिवेणियों के दर्शन होते हैं। उत्तर-पश्चिम भारत और मध्य-देश की विभाजक देहली पर बसी हुई यह नगरी अपने भौगोलिक महत्त्व के कारण भारतीय, भारतीय-शक तथा यूनानी सभ्यताओं की संगम-स्थली बनी। ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्म की त्रि-धाराओं का मिलन भी मथुरा में ही हुआ, इन्हीं धाराओं के कारण मथुरा की कितनी ही महत्त्वपूर्ण सुन्दर कलाकृतियां निर्मित हुईं। इन त्रिवेणियों के अतिरिक्त मथुरा में एक तीसरी भव्य त्रिवेणी के दर्शन होते हैं। यह भारतीय इतिहास के तीन महत्त्वपूर्ण युगों अर्थात् मौर्य-शुंग, शक-कुषाण व गुप्त-काल का संगम है। इन विभिन्न युगों ने भी मथुरा कला के निर्माण में भरपूर योग प्रदान किया।

मौर्य-शुंग काल में मथुरा कला ने अपने प्राचीन परम्पराप्राप्त अभिप्रायों एवं धार्मिक मान्यताओं का प्रचुर उपयोग किया। ये मान्यताएं एवं अभिप्राय यक्ष पूजा, नाग पूजा, पद्माश्री या श्रीलक्ष्मी के रूप में शक्ति की आराधना, चक्र एवं चैत्य की अर्चना, स्तम्भ पूजन आदि विविध रूपों में समाज में चली आ रही थी। मथुरा कला की मध्यावस्था अर्थात् कुषाण सम्राटों का शासनकाल वस्तुतः उसका स्वर्ण-युग था। इस युग की कला में दृष्टिगोचर होने वाली क्रियाशीलता, अथक लगन, उर्वरा सृजन शक्ति, तथा अभिनव प्रयोग करने की क्षमता, भारतीय कला के इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। सचमुच कुषाण कलाकार नवीन प्रयोगों को करने में अत्यन्त साहसिक थे, जिसका सबसे सुन्दर उदाहरण बुद्ध प्रतिमा का निर्माण है। इन कलाकारों के लिए तथागत को साकार रूप में अंकित करना एक अपूर्व कार्य था। मध्य देश से लेकर गंधार देश के बीच क्रियाशील रहने वाले सर्वास्तिवादिन् तथा महासांघिकों, जैसे बौद्ध सम्प्रदाय एक ऐसी धार्मिक विचारसरणिका प्रतिपादन कर रहे थे जिसका केन्द्र-बिन्दु बुद्ध की साकार प्रतिमा ही थी। कुषाण कलाकारों ने इस नवीन विचार प्रणाली को समुचित रूप से अपनाया और तथागत बुद्ध की साकार प्रतिमा को जन्म दिया, जिसने आगे चलकर समूचे एशिया में बौद्ध धर्म का कायाकल्प ही कर दिया। कुषाणयुगीन कलाकारों का यह प्रयत्न आज कई रूपों में देखा जा सकता है।

कुषाण काल के बाद गुप्तों का युग आया। इस में माथुरी कला ने देव प्रतिमा तथा देवायतनों के निर्माण में समुचित हाथ बँटाया।

सौभाग्य से मथुरा की कलाकृतियों में से बहुत सी आज बची हैं। भारतीय संस्कृति, कला व धर्म का अध्ययन करने वालों के लिए मथुरा का पुरातत्त्व संग्रहालय एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण तीर्थ है, जहां पर मथुरा के प्राचीन कला-वैभव को देखा और समझा जा सकता है। संग्रहालय के विविध कक्ष, जिनमें ये कलाकृतियां सुन्दर ढंग से सजाकर रखी गई हैं, दर्शकों को विपुल मात्रा में निरंतर आकृष्ट करते रहते हैं। इन दर्शकों की सहायता के लिए कभी यहां मथुरा कला पर प्रकाश डालने वाला अच्छा साहित्य उपलब्ध था, जैसे डा. जे. पी. एच. फोगल का मथुरा संग्रहालय का कॅटलाग आदि। डा. फोगल की यह सूची सन् १६१० में प्रकाशित हुई थी, तब से आज तक संग्रहालय में पांच हजार से अधिक ही नवीन मूर्तियां प्राप्त की गई हैं।

साधारण दर्शक के लिए संग्रहालय की मूर्तियों का परिचय कराने वाले ग्रंथ की अत्यन्त आवश्यकता थी। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि संग्रहालय के वर्तमान अध्यक्ष श्री नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने एक ऐसे ग्रंथ का प्रणयन किया है जो मथुरा कला एवं कलाकृतियों का परिचय कराता है। इस ग्रंथ में मथुरा कला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा संग्रहालय के इतिहास के साथ-साथ माथुरी कलाकृतियों के चुने हुए सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं जो कला के इस महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय के नवीन दर्शन कराते हैं। श्री जोशी मथुरा कलाकृतियों के वैभव से भली प्रकार परिचित हैं, और मैं यह देखकर प्रसन्न हूं कि उन्होंने इस ग्रंथ में उनके पास सुरक्षित कलाकृतियों का सुन्दर परिचय कराया है।

वासुदेवशरण अग्रवाल
प्राध्यापक
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ व पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका : २ : नीचे से ६ वीं पंक्ति	महासांविक	महासांधिक
आमुख : ६ : नीचे से ८ वीं पंक्ति	मूतियां	मूर्तियां
आमुख : ६ : नीचे से ७ वीं पंक्ति	प्रतिमा	प्रतिमा
कालक्रम :११: नीचे से १४ वीं पंक्ति	कटफिरा	कटफिश
मांगलिक चिह्न	चिरत्न	त्रिरत्न
वही, अगला पृष्ठ	श्रीबत्स	श्रीवत्स
पृ. ४ ऊपर से ३ री व ६ वीं पंक्ति	गढ़वाल	गहड़वाल
पृ. ४ ऊपर से ६ वीं पंक्ति	१५ वीं शताब्दी	१६ वीं शताब्दी
पृ. ५ नीचे से ४ थी पंक्ति	भगवानलाल इन्द्राजी	भगवानलाल इन्द्रजी
पृ. ६ ऊपर से १० वीं पंक्ति	सन् १८३६	सन् १८६६
पृ. १४ प्रथम एवं नीचे से २ री पंक्ति	मालधारी	मालाधारी
पृ. १५ पाद टिप्पणी ४	सी. एस. कीफर	सी. एम. कीफर
पृ. २१ पाद टिप्पणी १	Bodhisatta	Bodhisattva
पृ. २१ ऊपर से ४ थी पंक्ति	उर्णा	ऊर्णा
पृ. २२ पाद टिप्पणी २	Kuishna	Kushana
पृ. २६ नीचे से छठी पंक्ति	मूर्तियों	मूर्तियां
पृ. २८ अन्तिम पंक्ति	केश विन्यास	वेश विन्यास
पृ. ३० ऊपर से १३ वीं पंक्ति	चित्र ७०	चित्र ७८-७९
पृ. ३० नीचे से दूसरी पंक्ति	प्रतिमा में वह	प्रतिमा में प्रायः वह
पृ. ३२ नीचे से ११ वीं पंक्ति	चित्र ८०	चित्र ८२
पृ. ३२ नीचे से ९ वीं पंक्ति	उर्ध्वमेढ़	ऊर्ध्वमेढ़
पृ. ३३ नीचे से ११ वीं पंक्ति	धमिल्ल	धम्मिल्ल
पृ. ३४ नीचे से ७ वीं पंक्ति	उर्णा	ऊर्णा
पृ. ३९ प्रथम पंक्ति	साधू	साधु
पृ. ४२ नीचे से ७ वीं पंक्ति	वलाहस्स	वालाहस्स
पृ. ४२ पाद टिप्पणी १	Jatak	Jataka
पृ. ४८ पाद टिप्पणी २	Sculpture	Sculptures

पृष्ठ व पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
पृ. ४९ पाद टिप्पणी २	Sculpture	Sculptures
पृ. ५७ ऊपर से १० वीं पंक्ति	बौद्ध स्तूप	बोद्ध स्तूप
पृ. ६७ क्रम संख्या ५०	चीबर	चीवर
पृ. ७० क्रम संख्या ६१	राहू	राहु
पृ. ७१ नीचे से २ री पंक्ति	रंगीन चित्र	आसर्वघट धारिणी

चित्रावली

चित्र ३४	वसुंधरा	वसुधरा

परशिष्ट २

पृ. ५ पाद टिप्पणी १	चिह्ना	चिह्नों
पृ. ६ अन्तिम पैरा	अब तक मीमांसा	अब तक की मीमांसा

शब्दानुक्रमणिका

पृ. ७ नीचे से १२ वीं पंक्ति	गोकुल से जाना	गोकुल ले जाना
पृ. ७ नीचे से १० वीं पंक्ति	नाथ	साथ
पृ. ८ प्रथम पंक्ति	वानरिन्द्र	वानरिन्द
पृ. ९ ऊपर से ११ वीं पंक्ति	वलहस्स	वालाहस्स
पृ. ९ ऊपर से ४ थी पंक्ति	वोधिवृक्ष	बोधिवृक्ष

अनुक्रमणिका

संक्षेप संकेत

ASIR., Archaeological Survey of India, Annual Reports.
HIIA., History of Indian and Indonesian Art.
JBORS., Journal of the Bihar and Orissa Research Society.
JISOA., Journal of the Indian Society of Oriental Art.
JUPHS., Journal of the U. P. Historical Society.
सं. सं. मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या

आमुख

मथुरा का पुरातत्त्व संग्रहालय, भारत के सुप्रसिद्ध संग्रहालयों में गिना जाता है। ई. पू. की द्वितीय से ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी तक की कलाकृतियों का यहां बड़ा ही अनूठा संग्रह विद्यमान है। प्रस्तुत पुस्तक का लक्ष्य मुख्यतया इसी काल की संग्रहित कलाकृतियों का परिचय कराना है। यह न तो कोई गवेषणात्मक निबन्ध है और न इसमें किसी नवीन सिद्धान्त की स्थापना का समुचित प्रयास किया गया है। हां, यत्र-तत्र कतिपय संभावनाओं की चर्चा अवश्य की गई है। आशा की जाती है कि यह पुस्तक कला के मर्मज्ञ विद्वानों के लिए चित्र संग्रह की दृष्टि से उपयोगी होगी, साथ ही उन जिज्ञासुओं की विशेष सहायता करेगी जिन्हें भारतीय इतिहास के साधारण ज्ञान के आधार पर मथुरा कला के सम्बन्ध में कुछ अधिक विस्तार से जानने की चाह हो। इस पुस्तक को हाथ में लेकर संग्रहालय की महत्त्वपूर्ण मूर्तियों को भी सरलता से समझा जा सकता है।

पुस्तक के प्रारम्भ में मथुरा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्पष्ट की गई है। दूसरा अध्याय यहां की कलाकृतियों का संग्रह और इस संग्रहालय के निर्माण का इतिहास बतलाता है। तीसरे और चौथे अध्याय में मौर्यकाल से कुषाणकाल के अन्त तक मथुरा शैली के विकास की चर्चा की गई है। इन्हीं अध्यायों में इन कलाकृतियों की विशेषताएं, उन पर पड़ा हुआ गांधार कला का प्रभाव तथा बुद्ध प्रतिमा के निर्माण की कहानी भी बतलाई गई है। इस काल में ब्राह्मण धर्म की कुछ मूर्तियां बनीं। इनका विवेचन भी यहां मिलेगा। पांचवें अध्याय में गुप्तकाल और मध्यकाल की कलाकृतियों की मीमांसा है। कलाकृतियों पर अंकित विविध दृश्यों को समझने के लिए, उनकी कथावस्तु का ज्ञान अत्यावश्यक होता है। इसलिये मथुरा कला में अंकित विविध कथाओं का संक्षिप्त विवेचन करने के लिए छठे अध्याय का उपयोग किया गया है। उपसंहार रूप अन्तिम अध्याय में कई आनुषंगिक बातों की चर्चा की गई है; जैसे, मथुरा कला का प्रचार, प्राचीन मथुरा के विहार, स्तूप व मन्दिर, मथुरा कला पर प्रकाश डालने वाला प्राचीन साहित्य, इत्यादि।

ग्रंथ के उत्तरार्ध में पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा की कतिपय कलाकृतियों के चित्र हैं। इनमें से अनेक चित्र तो सर्वथा अप्रकाशित मूर्तियों के हैं, कुछ नवीन दृष्टिकोण से लिये गये हैं, जिससे मूर्ति के छिपे हुए सौंदर्य का दर्शन हो सके और कुछ ऐसे हैं जो पूर्व प्रकाशित होने पर भी सहज सुलभ नहीं हैं। वे मूर्तियां जो सुन्दर तो हैं, पर पर्याप्त रूप से प्रसिद्ध हैं; जैसे, कनिष्क की प्रतिमा, उदीच्य वेषधारी सूर्य की प्रतिमा, गुप्तकालीन बुद्ध की कायपरिमाण मूर्ति आदि, इस संग्रह में समाविष्ट नहीं हैं। इनके चित्र स्वतंत्र रूप से प्राप्य हैं। चित्रावली को समझने के लिए साथ में दिया हुआ उनका विवरण सहायक होगा। परिशिष्ट एक में मथुरा कला का तुलनात्मक अध्ययन शब्दचित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो जनसाधारण के लिए विशेष रूप से उपयोगी होगा। ग्रन्थ के सम्पूर्ण होने के पश्चात् संग्रहालय में कुषाणकालीन वराह की एक अभिनव प्रतिमा प्राप्त हुई। मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से यह बड़ी महत्त्वपूर्ण है; अतएव इसका विवरण परिशिष्ट दो में दिया गया है।

जिन ग्रंथकारों एवं विद्वानों की कृतियों से मुझे इस पुस्तक के लेखन में सहायता मिली उनका मैं चिरऋणी हूं। इनमें डा. आनन्द कुमारस्वामी, डा. जे. पी एच. फोगल, मेरे गुरु एवं यहां के भूतपूर्व संग्रहालयाध्यक्ष डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गुरुवर डा. अग्रवालजी के प्रति तो मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ। शरीर से अस्वस्थ एवं कार्यव्यस्त होते हुए भी उन्होंने भूमिका लेखन विषयक मेरी प्रार्थना तत्काल स्वीकार की और आशीर्वाद के रूप में विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर इस ग्रन्थ को गौरव प्रदान किया। अखिल भारतीय मुद्रा परिषद् के कोषाध्यक्ष डा. रायगोविन्दचन्द्र, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के भूतपूर्व प्राध्यापक पं. कुबेरनाथ सुकुल तथा सागर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के अध्यक्ष पं. कृष्णदत्त वाजपेयी को भी इस प्रसंग में नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने इस ग्रंथ की पांडुलिपि को पूरा पढ़ा और अनेक उपयोगी सुझाव दिये।

ग्रन्थ के लेखनमात्र से कोई कार्य सिद्ध न होता यदि इसके प्रकाशन की व्यवस्था न हुई होती। एक सौ से अधिक फलकों से युक्त इस ग्रन्थ का प्रकाशन बहुत ही व्ययसाध्य था। इस गुरुतर भार को उत्तर-प्रदेश के सूचना एवं सांस्कृतिक विभागों के निदेशक श्री गिरिजाकिशोरजी जोशी ने अकृत्रिम स्नेह से उठाया और सूचना विभाग को इसके प्रकाशन के लिए सुस्पष्ट आदेश दिये। सांस्कृतिक विभाग के उपनिदेशक श्री लक्ष्मीकान्तजी गुप्त ने अपनी ओर से इसे पूरा कराने में कुछ भी न उठा रखा। उन्होंने ग्रन्थ को पूरा पढ़ा और कई उपयोगी बातें सुझाईं। ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट एक के रूप में दिया गया 'मथुरा कला का तुलनात्मक अध्ययन' गुप्त जी के ही एक सुझाव का फल है। अतएव श्री गिरिजाकिशोरजी जोशी तथा श्री लक्ष्मीकान्तजी गुप्त के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता प्रगट करना मैं अपना अनिवार्य कर्त्तव्य समझता हूँ।

इस ग्रंथ में प्रकाशित सभी चित्र संग्रहालय में ही बनाये गये हैं। एतदर्थ हमारे छाया चित्रकार श्री कृष्णदत्त मिश्र विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं। रेखाचित्र यहीं के मूर्तिकार श्री लालजीप्रसाद श्रीवास्तव के बनाये हुए हैं। ग्रन्थ की पूर्णता में पुरातत्त्व संग्रहालय के मेरे सभी सहयोगियों का साभार उल्लेख आवश्यक है जिनके सक्रिय सहयोग के बिना ग्रंथ का यह दृश्य रूप संभव न होता।

प्रकाशन कार्य सूचना विभाग को सौंपा जाने के बाद इस विभाग के सहायक निदेशक श्री ठाकुरप्रसाद सिंह ने लेखक से विशेष रूप से पूर्व परिचित न होते हुए भी इसे अपना निजी कार्य समझा और ग्रंथ को सुन्दरतम बनाने के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएं तत्परता से कीं। अतएव उनका भी मैं ऋणी हूं। साथ ही साथ ग्रंथ के मुद्रक मेहरा आफसेट प्रेस के संचालक श्री श्रीराम मेहरा व उनके तकनीकी सहायक श्री बोरकर व श्री टणक आदि का साभार उल्लेख भी आवश्यक है।

मथुरा
महाशिवरात्रि
२०-१-६४

नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी

मथुरा कला के इतिहास का कालक्रम

बुद्ध	लगभग	६२३-५४३ ई. पू.
महावीर	लगभग	५९९-५२७ ई. पू.
मौर्यकाल	लगभग	३२५-१८४ ई. पू.
शुंगकाल-मित्र तथा दत्त वंश		
	(अ) लगभग	१८४-१०० ई. पू.
	(आ) लगभग	५७-५० ई. पू.
शक-क्षत्रपकाल	लगभग	१००-५७ ई. पू.
हगन व हगामस		
महाक्षत्रप राजुल		
महाक्षत्रप शोंडास		
घटक		
कुषाण काल	लगभग	१-२०० ई. सन्
कुजुल कटफिश	लगभग	१-५० ई. सन्
वेम कटफिश	लगभग	४०-७७ ई. सन्
कनिष्क	लगभग	७८-१०१ ई. सन्
हुविष्क	लगभग	१०२-१३८ ई. सन्
वासुदेव प्रथम	लगभग	१३९-१७६ ई. सन्
वासुदेव द्वितीय	लगभग	१७७-२०० ई. सन्
संक्रमण या कुषाण-गुप्तकाल	लगभग	२००-३५० ई. सन्
गुप्तकाल	लगभग	३१९-६०० ई. सन्
पूर्व मध्यकाल या गुप्तोत्तर काल	लगभग	६००-९०० ई. सन्
उत्तर मध्यकाल	लगभग	९००-१२०० ई. सन्

मथुरा के अभिलेखों में जिस संवत् का प्रयोग किया गया है वह शक संवत् है जिसे शालिवाहन शक भी कहते हैं। कनिष्क के राज्यारोहण के समय से अर्थात् सन् ७८ से इसका प्रारम्भ होता है, अतएव शक संवत् की वर्ष संख्या में ७८ का योग करने से हमें तत्कालीन ईसवी सन् का पता लगता है। गुप्त संवत् सन् ३१९ से प्रारम्भ होता है।

माङ्गलिक चिह्न
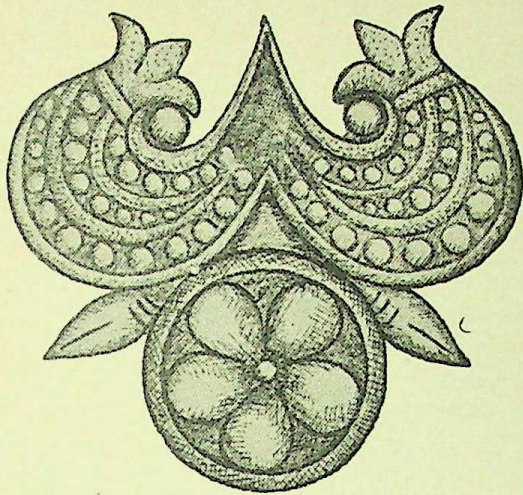
चिरत्न
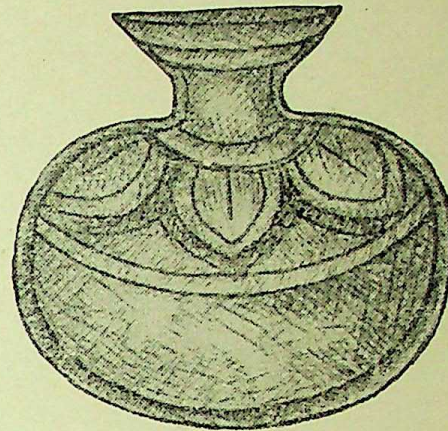
पूर्णघट
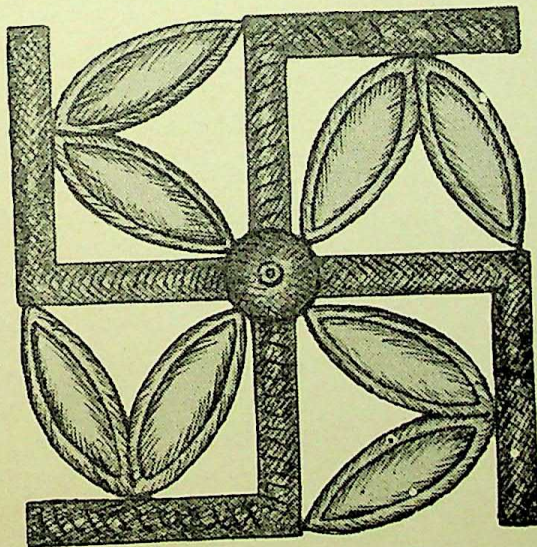
स्वस्तिक
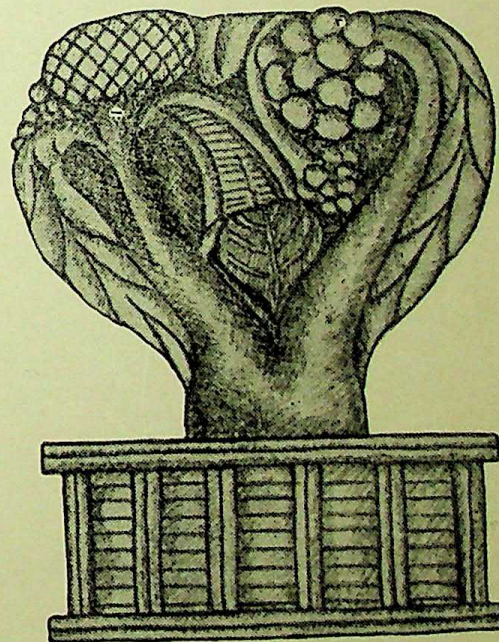
बोधिवृक्ष

माङ्गलिक चिह्न

श्रीवत्स
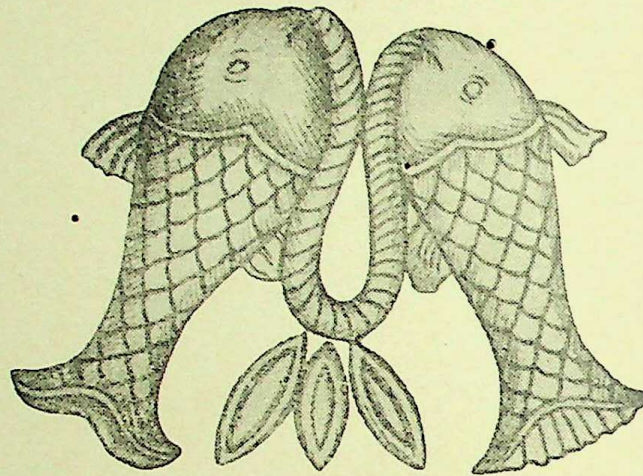
मत्स्य युग्म
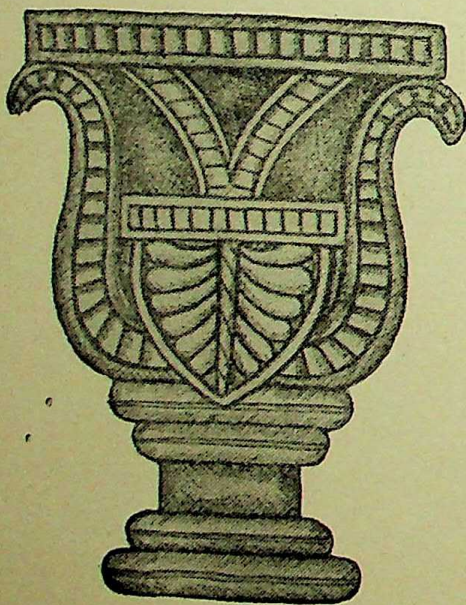
भद्रासन
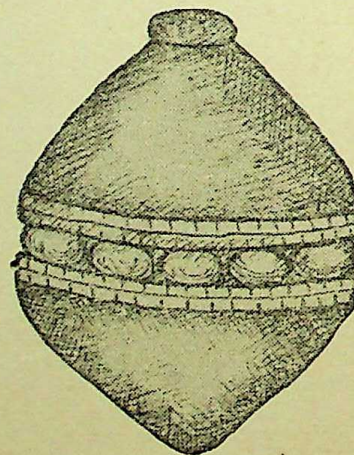
शराव सम्पुट

मथुरा का सामान्य परिचय

भारतवर्ष का वह भाग जो हिमालय और विंध्याचल के बीच में पड़ता है, प्राचीनकाल में आर्यावर्त कहलाता था। यहां पर पनपी हुई भारतीय संस्कृति को जिन धाराओं ने सींचा वे गंगा और यमुना की धाराएं थीं। इन्हीं दोनों नदियों के किनारे भारतीय संस्कृति के कई केन्द्र बने और विकसित हुए। वाराणसी, प्रयाग, कौशाम्बी, हस्तिनापुर, कन्नौज आदि कितने ही ऐसे स्थान हैं, परन्तु यह तालिका तब तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक इसमें मथुरा का समावेश न किया जाय। यह नगर उत्तर-प्रदेश के पश्चिम में (२७/२८ उत्तर तथा ७७/४१ पूर्व) यमुना नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है। प्राचीनकाल से अब तक इस नगर का अस्तित्व अखण्डित रूप से चला आ रहा है।

इसे पहले मधुरा कहते थे; क्योंकि यहां मधु नाम का एक दैत्य शासन करता था। अयोध्या के सूर्यवंशी राजा रामचन्द्र के समय उनके भाई शत्रुघ्न ने मधु के बेटे लवण से इस नगरी को छीना। चन्द्रवंशी राजाओं के शासन काल में मथुरा और उसके आसपास का प्रदेश, जिसे शूरसेन कहा जाता था, महत्त्वपूर्ण हो गया; क्योंकि इस समय यह स्थान भारत के एक दूसरे महापुरुष तथा धार्मिक दृष्टि से पूर्णावतार समझे जाने वाले श्रीकृष्ण का जन्मस्थान बना। श्रीकृष्ण से इसका निकटतम सम्बन्ध होने के कारण वैष्णवों का यह प्रधान क्षेत्र हो गया।

वैष्णवों के समान बौद्धों का भी इस स्थान से निकट का सम्बन्ध रहा। बुद्ध के जन्म के पूर्व ही मथुरा की गणना भारत के प्रमुख सोलह राज्यों या जनपदों में की जाती थी। ऐसा माना जाता है कि एक बार बुद्ध मथुरा आये थे।

बौद्धों के समान जैन भी इस नगर के महत्त्व को स्वीकार करते थे। यह प्राचीनकाल से ही सुपार्श्वनाथ का स्थान माना जाता है।[1] यहां उनका प्राचीन देव-निर्मित स्तूप रहा है। इसके अतिरिक्त इस नगर का सम्बन्ध तीर्थंकर नेमिनाथ से भी था।[2]

[1] **विविधतीर्थकल्प**—मथुरापुरी कल्प, पृ. १७, पृ. ८५—
मथुरायां महालक्ष्मीनिर्मित : श्री सुपार्श्वस्तूप :

[2] **वही**, पृ. ८६—मथुरायां.......श्री नेमिनाथः

पांचवीं-छठी ई. पू. के अन्त में शूरसेन जनपद, मगध में शासन करने वाले नंद वंश के अधिकार में गया, पर जब मगध पर अधिकार जमाकर चन्द्रगुप्त मौर्य पाटलिपुत्र की गद्दी पर आरूढ़ हुआ तब धीरे-धीरे मथुरा मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत आ गयी। उसके पौत्र सम्राट् अशोक ने यहां यमुना के तट पर कुछ स्तूप बनवाये थे, जो सातवीं शताब्दी में आये हुए चीनी यात्री हुएनसांग ने देखे थे।[१] अशोक के गुरु उपगुप्ताचार्य का मथुरा से निकट सम्बन्ध था।[२]

मौर्यों के बाद लगभग ई. पू. १८५ में शुंगवंश ने मथुरा पर अधिकार किया। पुष्यमित्र शुंग के समकालीन वैयाकरण पतंजली ने यहां के लोगों की श्री व सम्पन्नता का उल्लेख किया है।[३] गांधार (प्राचीन भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग) के प्रमुख नगर पुष्कलावती को पाटलिपुत्र, वैशाली, ताम्रलिप्ति, श्रावस्ती, कौशाम्बी आदि शहरों से जोड़ने वाला मार्ग मथुरा होकर जाता था। इसी प्रकार विदिशा और उज्जयिनी होकर पश्चिम के सबसे बड़े बन्दरगाह भरुकच्छ (भडौच) को जाने वाला मार्ग भी मथुरा से ही जाता था।[४] फलतः यह व्यापार का भी एक बड़ा केन्द्र बन गया था। इस नगरी को समकालीन साहित्य में सुभिक्षा, ऐश्वर्यवती और घनी बस्ती वाली कहा गया है।[५]

मथुरा के जगमगाते वैभव को देखकर यूनानी आक्रमणकारियों की दृष्टि इस ओर घूमी और उन्होंने लगभग ई. पूर्व द्वितीय शताब्दी के मध्य में मथुरा पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का उल्लेख युग पुराण में मिलता है। परन्तु आपसी झगड़ों के कारण यवनों के यहां पैर न जम सके।

शुंगवंश की समाप्ति के बाद भी कहीं-कहीं इस वंश के छोटे-मोटे शासक राज्य करते रहे। मथुरा में मित्रवंशी राजाओं का शासन कुछ काल तक चलता रहा। इनकी मुद्राएं मथुरा से प्राप्त हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त बलभूति तथा दत्त नाम वाले राजाओं के सिक्के मथुरा से प्राप्त हुए हैं। ये सारे शासक मथुरा में ई. पू. १०० तक शासन करते रहे।

लगभग ई. पू. १०० में विदेशी शकों का बल बढ़ने लगा। मथुरा में भी इनका केन्द्र स्थापित हुआ। यहां के शासक शकक्षत्रप के नाम से पहचाने जाते हैं। इनमें राजुल या राजबुल तथा शोडास का काल विशेष उल्लेखनीय है। इस समय के कई महत्त्वपूर्ण शिला-

१ अशोककालीन कोई सुनिश्चित कलाकृति इस समय उपलब्ध नहीं है, पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि अभी मथुरा से २७ मील दूर नोह नामक स्थान पर जो उत्खनन हुआ है, उसमें मौर्यकालीन चमक वाला एक चुनार पत्थर का टुकड़ा भी मिला है।

२ **दिव्यावदान,** २७, कुणालावदान, पृ. २४४।

३ प्रभुदयाल अग्निहोत्री, **पतञ्जलिकालीन भारत,** पटना १९६३, पृ. ११९।

४ जे. पी. एच. फोगल, *La Sculpture De Mathura*, पृ. १७-१८।

५ **ललितविस्तर,** ३, पृ. १५ —"इयं मथुरा नगरी ऋद्धा च स्फीता च क्षेमा च सुभिक्षा च आकीर्ण बहुजनमनुष्या।"

लेख हमें प्राप्त हुए हैं जिनमें सबसे उल्लेखनीय वह लेख है जिसमें एक कृष्ण (वासुदेव) मन्दिर के निर्माण किये जाने का उल्लेख है।[1]

इन शकों को ई. पू. ५७ में मालवगण ने जीत लिया, तथापि इसी समय से शकों की एक दूसरी शाखा, जो आगे कुषाण कहलायी, बलशालिनी हो रही थी।

कुषाण इस देश के लिए पूर्णतः विदेशी थे। प्राचीनकाल में चीन के उत्तर-पश्चिम प्रदेश में यूची नाम की एक जाति रहा करती थी। लगभग १६५ ई. पू. में ये लोग वहां से भगाये गये। अपनी मूलभूमि छोड़ने के बाद कुछ काल तक ये लोग सीस्तान या शकस्थान में जमे रहे पर आगे चलकर उन्हें वह स्थान भी छोड़ना पड़ा। वे और भी अधिक दक्षिण की ओर हटे। लगभग ई. पू. १० में बल्ख या बैक्ट्रिया पर इनका अधिकार हो गया। लगभग सन् ५० में तक्षशिला का भूप्रदेश भी इनके अधिकार में आगया। अब ये कुषाण नाम से पहिचाने जाने लगे। इस समय उनका नेता था कुजुल कैडफाइसेस या कट्फिस प्रथम। इसके बाद कट्फिस द्वितीय या वेम उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके इष्टदेव शिव थे। यह पराक्रमी शासक था। इसकी मृत्यु के बाद सन् ७८ में कुषाण साम्राज्य का शासन कनिष्क के हाथ में आया। वेम और कनिष्क ने राज्य की सीमाओं को खूब बढ़ाया। इस समय राज्य की राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) थी, परन्तु उसके दक्षिणी भाग का मुख्य नगर मथुरा था। शकक्षत्रपों के समय मथुरा उनका एक प्रमुख केन्द्र रहा। कुषाणों ने भी उसे इसी रूप में अपनाया। मथुरा के इन राजकीय परिवर्तनों का प्रभाव उसकी कला पर पड़ना स्वाभाविक था। इसी प्रभाव ने यहां कला की एक नवीन शैली को जन्म दिया जो भारतीय कला के इतिहास में कुषाण-कला या मथुरा-कला के नाम से प्रसिद्ध है। कुषाणवंश के तीनों सम्राट् कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव के समय यह नगर और यहां की कला उन्नत होते चले गये। अपनी कलाकृतियों के लिए समस्त उत्तर-भारत में मथुरा प्रसिद्ध हो गयी और यहां की मूर्तियां दूर-दूर तक जाने लगीं।

उत्तर-भारत के यौधेयादि गणराज्यों ने ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के अन्त में यहां से कुषाणों के पैर उखाड़ डाले। अब कुछ समय के लिए मथुरा नागों के अधिकार में चली गयी। चौथी शती के आरम्भ में उत्तर-भारत में गुप्तवंश का बल बढ़ने लगा। धीरे-धीरे मथुरा भी गुप्त साम्राज्य का एक अंग बन गयी। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का ध्यान मथुरा की ओर बना रहता था। इस समय के मिले हुए लेखों से पता चलता है कि गुप्तकाल में यह नगर शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय का केन्द्र रहा। साथ ही साथ बौद्ध और जैन भी यहां जमे रहे।

कुमारगुप्त प्रथम के शासन के अन्तिम दिनों में गुप्त साम्राज्य पर हूणों का भयंकर आक्रमण हुआ। इससे मथुरा बच न सकी। आक्रमणकारियों ने इस नगर को बहुत कुछ नष्ट कर

[1] मथुरा सं. सं. ०० क्यू १; १३·३६७

दिया। गुप्तों के पतन के बाद यहां की राजनीतिक स्थिति बड़ी डावांडोल थी। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह नगर हर्ष के साम्राज्य में समाविष्ट हो गया। इसके बाद बारहवीं शती के अन्त तक यहां क्रमशः गुर्जर-प्रतिहार और गढ़वालवंश ने राज्य किया। इस बीच की महत्त्वपूर्ण घटना महमूद गजनवी का आक्रमण है। यह आक्रमण उसका नवां आक्रमण था जो सन् १०१७ में हुआ। हूण आक्रमण के बाद मथुरा के विनाश का यह दूसरा अवसर था। ११वीं शताब्दी का अन्त होते-होते मथुरा पुनः एक बार हिन्दू राजवंश के अधिकार में चली गयी। यह गढ़वाल-वंश था। इस वंश के अन्तिम शासक जयचंद के समय मथुरा पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

इस समय से लगभग ३०० वर्षों तक अर्थात् १२वीं से १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मथुरा दिल्ली के सुलतानों के अधिकार में रही। परन्तु इस काल की कहानी केवल अवनति की कहानी है। सन् १५२६ के बाद मथुरा मुगल साम्राज्य का अंग बनी। इस काल-खण्ड में अकबर के शासनकाल को (सन् १५५६–१६०५) नहीं भुलाया जा सकता। सभी दृष्टियों से, विशेषतः स्थापत्य की दृष्टि से इस समय मथुरा की बड़ी उन्नति हुई। अनेक हिन्दू मन्दिरों का निर्माण हुआ तथा ब्रज साहित्य भी अष्टछाप के कवियों की छाया में खूब पनपा। न्यूनाधिक रूप में शाहजहां के शासनकाल तक यह स्थिति बनी रही, पर औरंगजेब के समय पांसा फिर पलटा। उसकी धर्मांधता ने यहां पर बहुत बड़े अत्याचार किये। केशवदेव का विशाल मन्दिर अन्य मन्दिरों के साथ धराशायी हो गया और वहां मस्जिदें बनवाई गयीं। औरंगजेब ने मथुरा और वृन्दावन के नाम भी क्रमशः इस्लामाबाद और मोमीनाबाद रखे थे, परन्तु ये नाम उसकी गगनचुंबी आकांक्षाओं के साथ ही विलीन हो गये।

औरंगजेब की शक्ति को सुरंग लगाने वालों में जाटों का बहुत बड़ा हाथ था। चूड़ामणि जाट ने मथुरा पर अधिकार कर लिया। उसके उत्तराधिकारी बदनसिंह और सूरजमल के समय यहां जाटों का प्रभुत्व बढ़ा। इसी बीच मथुरा पर नादिरशाह का आक्रमण हुआ।

सन् १७५७ में इस नगर को एक दूसरे क्रूर आक्रमण का सामना करना पड़ा जिसमें यमुना का जल सात दिन तक मानवीय रक्त से लाल होकर बहता रहा। यह अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण था।

सन् १७७० में जाट मराठों से पराजित हुए और यहां अब मराठा शासन की नींव जमी। इस सम्बन्ध में महादजी सिंधिया का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। सन् १८०३ तक मथुरा मराठों के अधिकार में रही। ३० दिसम्बर, १८०३ को अंजनगांव की संधि के अनुसार यहाँ अंग्रेजों का अधिकार हो गया जो १५ अगस्त, १९४७ तक बराबर बना रहा।

मूर्तिकला तथा स्थापत्यकला की दृष्टि से मुसलमानों के अधिकार के बाद अकबर के शासनकाल को छोड़कर मथुरा ने कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं की।

मथुरा की कलाकृतियों की प्राप्ति और उनका संग्रह

मथुरा की कलाकृतियों में पत्थर की प्रतिमाओं तथा प्राचीन वास्तुखण्डों के अतिरिक्त मिट्टी के खिलौनों का भी समावेश होता है। इन सबका प्रमुख प्राप्ति स्थान मथुरा शहर और उसके आसपास का क्षेत्र है। वर्तमान मथुरा शहर को देखने से स्पष्ट होता है कि यह सारा नगर टीलों पर बसा है। इसके आसपास भी लगभग १० मील के परिसर में अनेक टीले हैं। इनमें से अधिकतर टीलों के गर्भ से माथुरीकला की अत्युच्च कोटि की कलाकृतियां प्रकाश में आयी हैं। कंकाली टीला, भूतेश्वर टीला, जेल टीला, सप्तर्षि टीला, आदि ऐसे ही महत्त्व के स्थान हैं। इन टीलों के अतिरिक्त कई कुंओं ने भी अपने उदरों में मूर्तियों को आश्रय दे रखा है। मुसलमानों के आक्रमण के समय विनाश के डर से बहुधा मूर्तियों को उनमें फेंक दिया जाता था। इसी प्रकार यमुना के बीच से अनेक प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। महत्त्व की बात तो यह है कि जहां कुषाण और गुप्त काल में अनेक विशाल विहार, स्तूप, मन्दिर तथा भवन विद्यमान थे, वहां उनमें से अब एक भी अवशिष्ट नहीं है, सबके सब धराशायी होकर पृथ्वी के गर्भ में समा गये हैं।

माथुरीकला की मूर्ति के प्रथम दर्शन और उसकी पहचान सन् १८३६ में हुई। आजकल यह कलकत्ते के संग्रहालय में है। उस समय उसे सायलेनस के नाम से पहचाना गया था। वस्तुतः यह आसवपान का दृश्य है। इसके बाद सन् १८५३ में जनरल कनिंघम ने कटरा केशवदेव से कई मूर्तियां व लेख प्राप्त किये। उन्होंने पुनः सन् १८६२ में इसी स्थान से गुप्त संवत् २३० (सन् ५४९-५०) में बनी हुई यशा विहार में स्थापित सर्वांगसुन्दर बुद्ध की मूर्ति खोज निकाली। यह इस समय लखनऊ के संग्रहालय में है। इसी बीच सन्१८६० में कलक्टर की कचहरी के निर्माण के लिए जमालपुर टीले को समतल बनाया गया जहां किसी समय दधिकर्ण नाग का मंदिर व हुविष्क विहार था। इस खुदाई से मूर्तियां, शिलापट्ट, स्तम्भ, वेदिकास्तम्भ, स्तम्भाधार आदि के रूप में मथुरा-कला का भण्डार प्राप्त हुआ। इसी स्थान से इस संग्रहालय में प्रदर्शित सर्वोत्कृष्ट गुप्तकालीन बुद्ध मूर्ति भी मिली। सन् १८६९ में श्री भगवानलाल इन्द्राजी को गांधारकला की स्त्रीमूर्ति और सुप्रसिद्ध सिंहशीर्ष मिला।

सन् १८७१ में जनरल कनिंघम ने पुनः मथुरा यात्रा की और इस समय उन्होंने दो अन्य टीलों की, कंकाली टीले और चौबारा टीले की खुदाई कराई। कटरा केशवदेव से दक्षिण में

लगभग आधे मील के अन्तर पर बसे हुए कंकाली टीले ने मानों मथुरा कला का विशाल भण्डार ही खोल दिया। यहां कभी जैनों का प्रसिद्ध स्तूप, बौद्ध स्तूप था। कनिंघम साहब ने यहां से कनिष्क के राज्य—संवत् ५ से लेकर वासुदेव के राज्य संवत्सर १८ तक की अभिलिखित प्रतिमाएं हस्तगत कीं। चौबारा टीला वस्तुतः १२ टीलों का एक समूह है जहां पर कभी बौद्धों के स्तूप थे। यहीं के एक टीले से सोने का बना एक धातु-करण्डक भी मिला था। कनिंघम को एक दूसरे स्तूप से एक और धातु-करण्डक मिला जो इस समय कलकत्ते के संग्रहालय में है।

सन् १८७२ में ग्राउज़ महोदय ने निकटस्थ पालिखेड़ा नामक स्थान से यहां की दूसरी महत्त्वपूर्ण प्रतिमा आसवपायी कुबेर को प्राप्त किया था। सन् १८८८ से ९१ तक डाक्टर फ्यूहरर ने लगातार कंकाली टीले की खुदाई कराई। पहले ही वर्ष में ७३७ से अधिक मूर्तियां मिलीं जो लखनऊ के राज्य संग्रहालय में भेज दी गयीं। सन् १८३६ के बाद सन् १९०९ तक फिर मथुरा की मूर्तियों को एकत्रित करने का कोई उल्लेखनीय प्रयास नहीं हुआ। सन् १९०९ में रायबहादुर पं. राधाकृष्ण ने मथुरा शहर और गांव में बिखरी हुई अनेक मूर्तियों को एकत्रित किया। फरवरी सन् १९१२ में उन्होंने माँट गांव के टोकरी या इटागुरी टीले की खुदाई कराई और कुषाण सम्राट वेम, कनिष्क और चष्टन की मूर्तियों को अन्यान्य प्रतिमाओं के साथ प्राप्त किया। सन् १९१५ में नगर के और आसपास के गांव के कई कुंए साफ किये गये और उनमें से लगभग ६०० मूर्तियां मिलीं जिनमें से अधिकतर ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं। कुषाण कलाकृतियों के इस संग्रह में मथुरा के पास से बहने वाली यमुना नदी का भी योगदान कम नहीं है। ईसवी सन् की प्रथम शती के यूप स्तम्भों से लेकर आज तक उसके उदर से कितनी ही बहुमूल्य कलाकृतियां प्रकाश में आयी हैं।

संग्रहालय

मथुरा का यह विशाल संग्रह देश के और विदेश के अनेक संग्रहालयों में बंट चुका है। यहां की सामग्री लखनऊ के राज्य संग्रहालय में, कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय में, बम्बई और वाराणसी के संग्रहालयों में तथा विदेशों में मुख्यतः अमेरिका के बोस्टन संग्रहालय में, पेरिस व ज़ुरिच के संग्रहालयों व लन्दन के ब्रिटिश संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। परन्तु इसका सबसे बड़ा भाग मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त कतिपय व्यक्तिगत संग्रहों में भी मथुरा की कलाकृतियां हैं।

मथुरा का यह संग्रहालय यहां के तत्कालीन जिलाधीश श्री ग्राउज़ द्वारा सन् १८७४ में स्थापित किया गया था। प्रारम्भ में यह संग्रहालय स्थानीय तहसील के पास एक छोटे भवन में रखा गया था। कुछ परिवर्तनों के बाद सन् १८८१ में उसे जनता के लिए खोल दिया गया। सन् १९०० में संग्रहालय का प्रबन्ध नगरपालिका के हाथ में दिया गया। इसके पांच वर्ष बाद तत्कालीन पुरातत्त्व अधिकारी डा. जे. पी. एच. फोगल के द्वारा इस संग्रहालय

की मूर्तियों का वर्गीकरण किया गया और सन् १९१० में एक विस्तृत सूची प्रकाशित की गई। इस कार्य से संग्रहालय का महत्त्व शासन की दृष्टि में बढ़ गया और सन् १९१२ में इसका सारा प्रबन्ध राज्य सरकार ने अपने हाथ में ले लिया।

सन् १९०८ से रायबहादुर पं. राधाकृष्ण यहां के प्रथम सहायक संग्रहाध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए, बाद में वे अवैतनिक संग्रहाध्यक्ष हो गये। अब संग्रहालय की उन्नति होने लगी, जिसमें तत्कालीन पुरातत्त्व निदेशक सर जॉन मार्शल और रायबहादुर दयाराम साहनी का बहुत बड़ा हाथ था। सन् १९२९ में प्रदेशीय शासन ने एक लाख छत्तीस हजार रुपया लगाकर स्थानीय डैम्पियर पार्क में संग्रहालय का सम्मुख भाग बनवाया और सन् १९३० में यह जनता के लिए खोला गया। इसके बाद ब्रिटिश शासन काल में यहां कोई नवीन परिवर्तन नहीं हुआ।

सन् १९४७ में जब भारत का शासन सूत्र उसके अपने हाथ में आया तब से अधिकारियों का ध्यान इस सांस्कृतिक तीर्थ की उन्नति की ओर भी गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इसकी उन्नति के लिए अलग धनराशि की व्यवस्था की गयी और कार्य भी प्रारम्भ हुआ। सन् १९५८ से कार्य की गति तीव्र हुई। पुराने भवन की छत का नवीनीकरण हुआ और साथ ही साथ सन् १९३० का अधूरा बना हुआ भवन पूरा किया गया। वर्तमान स्थिति में अष्टकोण आकार का एक सुन्दर भवन उद्यान के बीच स्थित है। इनमें ३४ फीट चौड़ी सुदीर्घ दरीची बनाई गई है और प्रत्येक कोण पर एक छोटा षट्कोण कक्ष भी बना है। शीघ्र ही मथुरा कला का यह विशाल संग्रह पूरे वैभव के साथ सुयोग्य वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से यहां प्रदर्शित होगा। शासन इससे आगे बढ़ने की इच्छा रखता है और परिस्थिति के अनुरूप इस संग्रहालय में व्याख्यान कक्ष, ग्रंथालय, दर्शकों का विश्राम स्थान आदि की स्वतंत्र व्यवस्था की जा रही है। इसके अतिरिक्त कला प्रेमियों की सुविधा के लिए मथुरा कला की प्रतिकृतियां और छायाचित्रों को लागत मूल्य पर देने की वर्तमान व्यवस्था में भी अधिक सुविधाएं देने की योजना है।

मथुरा कला—प्रारम्भ से कुषाण काल

यह आश्चर्य का विषय है कि मथुरा से मौर्यकाल की उत्कृष्ट पाषाणकला का कोई भी उदाहरण अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। मौर्यकाल का एक लेखांकित स्तंभ अर्जुनपुरा टीले से मिला भी था पर अब इसका पता नहीं है।

चीनी यात्री हुएनसांग के लेखानुसार यहां पर अशोक के बनवाये हुये कुछ स्तूप ७वीं शताब्दी में विद्यमान थे। परन्तु आज हमें इनके विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। लोक-कला की दृष्टि से देखा जाय तो मथुरा और उसके आसपास के भाग में इसके मौर्यकालीन नमूने विद्यमान हैं। लोक-कला की ये मूर्तियां यक्षों की हैं। यक्षपूजा तत्कालीन लोकधर्म का एक अभिन्न अंग थी। संस्कृत, पाली और प्राकृत साहित्य यक्षपूजा के उल्लेखों से भरा पड़ा है। पुराणों के अनुसार यक्षों का कार्य पापियों को विघ्न करना, उन्हें दुर्गति देना और साथ ही साथ अपने क्षेत्र का संरक्षण करना था।[1] मथुरा से इस प्रकार के यक्ष और यक्षणियों की छह प्रतिमाएं मिल चुकी हैं;[2] जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण परखम नामक गांव से मिली हुई अभिलिखित यक्ष-मूर्ति है (सी. १)। धोती और दुपट्टा पहने हुये स्थूलकाय माणिभद्र यक्ष खड़े हैं। इस यक्ष का पूजन उस समय बड़ा ही लोकप्रिय था। इसकी एक बड़ी प्रतिमा मध्यप्रदेश के पवाया गांव से भी मिली है, जो इस समय ग्वालियर के संग्रहालय में है। मथुरा की यक्षप्रतिमा भारतीय कला जगत् में परखम यक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। शारीरिक बल और सामर्थ्य की अभिव्यंजक प्राचीनकाल की ये यक्षप्रतिमाएं

[1] **वामनपुराण**, ३४.४४; ३५.३८।

[2] वासुदेवशरण अग्रवाल, Pre-Kushana Art of Mathura, *JUPHS.*, भाग ६, खण्ड २, पृ. ८९।

(अ) परखम से प्राप्त यक्ष—स. स. ०० सी. १।

(आ) बरोद् से प्राप्त यक्ष—स. स. ०० सी. २३।

(इ) मनसादेवी यक्षिणी।

(ई) नोह यक्ष—भरतपुर के पास।

(उ) पलवल यक्ष—लखनऊ संग्रहालय संख्या ओ. १०७।

(ऊ) श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल द्वारा नोह से प्राप्त नवीन छोटा यक्ष।

केवल लोक कला के उदाहरण ही नहीं अपितु उत्तर-काल में निर्मित बोधिसत्त्व, विष्णु, कुबेर, नाग (चित्र १) आदि देवप्रतिमाओं के निर्माण की प्रेरिकाएं भी हैं।

शुंग और शक क्षत्रप काल में पहुंचते-पहुंचते मथुरा को कला-केन्द्र का रूप प्राप्त हो गया। जैनों का देवनिर्मित स्तूप, जो आज के कंकाली टीले पर खड़ा था, उस काल में विद्यमान था।[1] इस समय के तीन लेख, जिनका सम्बन्ध जैन धर्म से है, अब तक मथुरा से मिल चुके हैं।[2] यहां से इस काल की कई कलाकृतियां भी प्राप्त हो चुकी हैं जिनमें बोधिसत्त्व की विशाल प्रतिमा (लखनऊ संग्रहालय, बी १२ बी), अमोहिनी का शिलापट्ट (लखनऊ संग्रहालय, जे. १), कई वेदिका स्तम्भ जिनमें से कुछ पर जातक कथाएं तथा यक्षणियों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं, प्रमुख हैं।

इस समय की कलाकृतियों को देखने से पता चलता है कि इस कला पर भरहूत और सांची की विशुद्ध भारतीय कला का प्रभाव स्पष्ट है।[3] शुंगकालीन मथुरा कला की निम्नांकित विशेषताएं गिनाई जा सकती हैं :

१. मूर्तियां अधिक गहरी व उभारदार न होकर चपटी हैं। उनका चौतरफा अंकन (carving in round) भी मथुरा कला का वैशिष्ट्य है, जो परखम यक्ष-प्रतिमा से ही मिलने लगता है।

२. स्त्री और पुरुषों की मूर्तियों में अलंकारों का बाहुल्य है।

३. वस्त्रों में छरहरापन न होकर एक प्रकार का भारीपन है।

४. भाव प्रदर्शन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है, अतः शान्ति, गाम्भीर्य, कुतूहल, प्रसन्नता, वैदुष्य आदि भावों का इन मूर्तियों के मुखों पर सर्वथा अभाव है।

५. इस काल की मानव मूर्तियों में बहुधा आंखों की पुतलियां नहीं बनाई गई हैं।

६. स्त्रियों के केशसंभार बहुधा, पुष्पमालाओं, मणिमालाओं तथा कीमती वस्त्रों से सुशोभित रहते हैं (चित्र ३)।

७. पुरुषों की पगड़ियां भी विशेष प्रकार की होती हैं। बहुधा वे दोनों ओर फूली हुई दिखलाई पड़ती हैं और बीच में एक बड़ी-सी फुल्लेदार कलगी से सुशोभित रहती हैं। कानों के पास पगड़ी के बाहर झांकने वाले केश भी खूब दिखलाई पड़ते हैं (चित्र २)।

८. इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बौद्ध धर्म से सम्बन्धित मूर्तियों में बुद्ध

[1] कृष्णदत्त वाजपेयी, मथुरा का देवनिर्मित बौद्ध स्तूप, **श्री महावीर स्मृतिग्रंथ**, खण्ड १, १९४८-४९, पृ. १८८-९१।
नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, जैन स्तूप और पुरातत्त्व, **वही**, पृ. १८३-८७।

[2] एस. बी. देव, *History of Jaina Monachism*, पृ. ९९।

[3] के. डी. बी. कार्ड्रिंगटन, Mathura of the Gods, **मार्ग**, खण्ड ९, संख्या २, मार्च १९५६, पृ. ४१-४२।

की मूर्ति नहीं बनाई जाती थी। उसके स्थान पर प्रतीकों का उपयोग किया जाता था जिनमें भिक्षापात्र, वज्रासन, उष्णीश या पगड़ी, त्रिरत्न, स्तूप, बोधिवृक्ष आदि मुख्य हैं।

इस सम्बन्ध में एक ज्ञातव्य बात यह भी है कि मथुरा कला में प्रभामण्डल का उपयोग प्रतीक रूप में किया गया है जो अन्यत्र नहीं दिखलाई पड़ता।[1] मथुरा कला की शुंगकालीन कलाकृतियों में वैष्णव और शैव मूर्तियां भी मिली हैं, जिनमें बलराम,[2] लिंगाकृति शिव (चित्र १०) और पंचबाण कामदेव (सं. सं. १८.१४४८) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कुषाण कला

जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार कला में समाज और साहित्य दोनों अंशतः प्रतिबिम्बित रहते हैं। मथुरा के इतिहास में यहां की जनता शकक्षत्रपों के समय सर्वप्रथम विदेशी संपर्क में आयी। परन्तु उनकी अपेक्षा उस पर कुषाण शासन का प्रभाव अधिक चिरस्थायी रूप से पड़ा। इस समय यहां के कलाकारों को अपनी जीविका के लिए विदेशियों का ही आश्रय ढूंढ़ना पड़ा होगा। इन्हीं कारणों से कवि के समान कलाकार की छेनी में भी कुषाण प्रभाव झलकने लगा। नवीन संस्कृति, नवीन शासक और नवीन परम्पराओं के साथ नवीन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ जिसने एक नवीन कला शैली को जन्म दिया जो मथुरा कला अथवा कुषाणकला[3] के नाम से प्रसिद्ध हुई।

कुषाण सम्राट् कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव का शासनकाल माथुरी कला का स्वर्णयुग था। इस समय इस शैली ने पर्याप्त समृद्धि और पूर्णता प्राप्त की। यद्यपि यहां की परम्परा का मूल भरहूत और सांची की विशुद्ध भारतीय धारा है तथापि इसका अपना महत्त्व यह है कि यहां प्राचीन पृष्ठभूमि पर नवीन विचारों से प्रेरित कलाकारों की छेनी ने एक ऐसी शैली को जन्म दिया जो आगे चलकर अपनी विशेषताओं के कारण भारतीय कला की एक स्वतन्त्र और महत्त्वपूर्ण शैली बन गई। इस कला ने अंकनीय विषयों का चुनाव भी पूर्ण सहिष्णुता से

[1] मथुरा संग्रहालय संख्या ३६.२६६३; ००.के १।
प्रभामण्डल को इस रूप में लेखक द्वारा ही प्रथम पहचाना गया है।

[2] लखनऊ संग्रहालय संख्या जी. २१५।

[3] प्रस्तुत पुस्तक में 'कुषाणकला' इस पद का व्यवहार प्रचलित अर्थ में ही किया गया है। जैसा श्री कीफर ने प्रतिपादन किया है, विस्तृत अर्थ में इस पद में कला की उन सभी शैलियों का समावेश होगा जो सोवियत तुर्किस्तान से सारनाथ (उत्तर प्रदेश) तक फैले हुए विशाल कुषाण साम्राज्य में प्रचलित थीं। इस अर्थ में बल्ख की कला, गांधार की यूनानी बौद्ध कला, सिरकप (तक्षशिला) की कुषाणकला तथा मथुरा की कुषाणकला का बोध होगा।

—देखिए सी. एम. कीफर, Kushana Art and the Historic Effigies of Mat and Surkh Kotal, **मार्ग**, खण्ड १५, संख्या २, पृ. ४४।

किया। इसके पुजारियों ने विष्णु, शिव, दुर्गा, कुबेर, सूर्य आदि के साथ-साथ बुद्ध और तीर्थंकरों की भी समान रूप से अर्चना की। इन कलाकृतियों को निम्नांकित वर्गों में बांटा जा सकता है :

(क) जैन तीर्थंकर प्रतिमाएं।
(ख) आयागपट्ट।
(ग) बुद्ध व बोधिसत्त्व प्रतिमाएं।
(घ) ब्राह्मण धर्म की मूर्तियां।
(ङ) यक्ष, यक्षिणी, नाग आदि मूर्तियां तथा मदिरापान के दृश्य।
(च) कथाओं से अंकित शिलापट्ट।
(छ) वेदिका स्तंभ, सूचिकाएं, तोरण, द्वारस्तंभ, जालियाँ आदि।
(ज) कुषाण शासकों की प्रतिमाएं।

कुषाणकला की विशेषताएं

इस कला की विशेषताएं संक्षेप में निम्नांकित हैं :

(१) विविध रूपों में मानव का सफल चित्रण।
(२) मूर्तियों के अंकन में परिष्कार।
(३) लम्बी कथाओं के अंकन में नवीनताएं।
(४) प्राचीन और नवीन अभिप्रायों की मधुर मिलावट।
(५) गांधार कला का प्रभाव।
(६) बुद्ध, तीर्थंकर एवं ब्राह्मण धर्म की बहुसंख्यक मूर्तियों का प्रादुर्भाव।
(७) व्यक्ति-विशेष की मूर्तियों का निर्माण।

ऊपर गिनाई हुई विशेषताओं का कलाकृतियों के सहारे कुछ विशेष अध्ययन करना उचित होगा।

१. विविध रूपों में मानव का सफल चित्रण

कुषाणकाल में मनुष्य और पशुओं के सम्मुख चित्रण की पुरानी परम्परा छोड़ दी गयी। साथ ही साथ मानव शरीर के चित्रण की क्षमता भी बढ़ गई। विशेषतः रमणी के सौंदर्य को रूप-रूपान्तरों में अंकित करने में मथुरा का कलाकार पूर्णतः सफल रहा। स्तन्य की ओर संकेत करने वाली स्नेहमयी देवी, झुनझुना दिखलाकर बच्चों का मनोरंजन करने वाली माता, विविध प्रकार के अलंकारों से अपने को मण्डित करने वाली युवतियां, घनराशि के समान श्याम केश-कलाप को निचोड़ते हुए उनके कारण मोर के मन में उत्सुकता जगाने वाली प्रेमिकाएं, उन्मुक्त आकाश के नीचे निर्झरस्नान करने वाली मुग्धाएं, फूलों को चुनने वाली अंगनाएं, कलश-धारणी गोपवधू, दीपवाहिका, विदेशी दासी, मद्यपान से मतवाली वेश्या, दर्पण से प्रसाधन

करने वाली रमणी आदि अनेकानेक रूपों में नारी को मथुरा के कलाकारों के द्वारा पूर्ण सफलता के साथ दिखलाया गया।

पुरुषों के चित्रण में भी वे पीछे नहीं थे। धन संग्रह के प्रतीक बड़ी तोंद वाले कुबेर, ईरानी वेश में सूर्य, राजकीय वेश में कुषाण दरबारी, विदेशी पहरेदार, फीतेदार चप्पल पहने हुए सैनिक, भोले-भाले उपासक, विविध प्रकार की पगड़ियां बांधे हुए पुरुष, बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से मंडित बोधिसत्त्व आदि छोटे-बड़े वर्ग के पुरुष और देवता बड़ी ही कुशलता से अंकित किये गये हैं।

२. मूर्तियों के अंकन में परिष्कार

कुषाणकाल की मूर्तियां शुंग काल के समान चपटी न होकर गहराई के साथ उकेरी गई हैं। प्रारम्भिक अवस्था की तुलना में अब आकृतियों की ऊंचाई बढ़ जाती है।[१] यहां तक कि वे कहीं-कहीं पृष्ठभूमि की सारी ऊंचाई में छा जाती हैं। उसी अनुपात में निम्नकोटि की आकृतियों की ऊंचाई में भी वृद्धि होती है। मथुरा की प्रारम्भिक कलाकृतियों की स्थूलता और भौंड़ापन कुषाणकाल में पहुंचते-पहुंचते मांसल और सुडौल शरीर में बदल जाता है। वस्त्रों के पहरावे में भी सुरुचि की मात्रा अधिक हो जाती है। अब उत्तरीय चपटे रूप में नहीं पड़ता अपितु मोटी घुमावदार रस्सी के रूप में दिखलाई पड़ता है।[२] प्रारम्भिक कुषाणकाल की मूर्तियों में केवल बांया कंधा ढँका रहता है और कमर के ऊपर वाला वस्त्र का भाग शरीर से सटा हुआ कुछ पारदर्शक-सा रहता है, नीचे वाले भाग की ओर अनुपाततः कम ध्यान दिया गया है। जांघ और पैरों की बनावट में एक प्रकार की कड़ाई दिखलाई पड़ती है।[३] कुषाण काल के मध्य में यह दोष हट जाता है और बहुधा मूर्तियां एक घुटना किंचित मोड़कर खड़ी दिखलायी पड़ती हैं।[४]

इस काल के मूर्ति निर्माण की दूसरी विशेषता मूर्तियों का आगे और पीछे दोनों ओर से गढ़ा जाना है। इस काल की बहुसंख्यक मूर्तियां ऐसी ही हैं। सम्मुख भाग के समान कलाकार ने पृष्ठ भाग की ओर भी खूब ध्यान दिया है। इसकी दो पद्धतियां थीं, या तो पीछे की ओर पीठ पर लहराने वाला केशकलाप, आभरण उत्तरीयादि वस्त्र, आदि दिखलाये जाते थे अथवा पशु-पक्षियों से युक्त वृक्ष अंकित किये जाते थे।[५]

[१] स्टेला क्रेमरिच, *Indian Sculpture*, कलकत्ता, १९३३, पृ. ४०-४३।

[२] वही।

[३] वही; *Age of the Imperial Unity*, भाग २, पृ. ५२२-२३।

[४] सं. सं. ०० एफ ६,००· ई. २४; १७·१३२५ आदि।

[५] अशोक एवं कदम्ब के वृक्ष तथा उन पर स्थित गिलहरी और शुक, सं. सं. १२.२६४;००· एफ २, ३३.२३२८।

३. लम्बी कथाओं के अंकन में नवीनताएं[१]

जातक कथाओं के समान अनेक दृश्योंवाली कथाएं भरहूत तथा सांची में भी अंकित की गई थीं, परन्तु वहां पद्धति यह थी कि एक ही चौखट के भीतर अगल-बगल या तले ऊपर कई दृश्यों को दिखलाया जाता था, पर अब प्रत्येक दृश्य के लिए अलग-अलग चौखट दी जाने लगी। उदाहरणार्थ मथुरा से प्राप्त एक द्वार स्तंभ पर अंकित नंद-सुन्दरी की कथा[२] कई चौखटों में इस प्रकार सजाई गई है कि उससे सम्पूर्ण द्वार-स्तंभ सुशोभित हो सके। चौखटें अलग-अलग होने के कारण उनके भीतर बनी मूर्तियों के आकार भी सरलता से ऊंचे बनाये जा सके।

४. प्राचीन और नवीन अभिप्रायों की मिलावट

मथुरा के कलाकारों ने परम्परा से चले आने वाले वृक्ष, लता और पशु-पक्षियों के अभिप्रायों को अपनाते हुए साथ ही अपनी प्रतिभा से देशकाल के अनुरूप नवीन अभिप्रायों का सृजन किया। उसका फल यह हुआ कि मथुरा की कला में प्रकृति और उसके अनेक रूपों का अंकन मिलता है। यहां विविध वृक्ष, लताएं, मगर, मछलियां आदि जलचर, मोर, हंस, तोते आदि पक्षी व गिलहरियां, बन्दर, हाथी, शरभ, सिंह आदि छोटे-बड़े पशु सभी दिखलाई पड़ते हैं। पुष्पों में यदि केवल कमल और कमल-लता को ही लें तो उसके अनेक रूप दृष्टिगोचर होते हैं। ईहामृग या काल्पनिक पशु-पक्षियों; जैसे, तोते की चोंचवाला मगर, मानव-मुख वाला मेंढक आदि का भी यहां अभाव नहीं है।

कुषाणकालीन कला में दृष्टिगोचर होने वाले अभिप्रायों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है[3] :

(१) प्राचीन भारतीय पद्धति के अभिप्राय।

(२) नवीन अभिप्राय जिनमें से कुछ पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट है।

प्रथम प्रकार के अभिप्राय वे हैं जो विशुद्ध रूप से भारतीय हैं और गांधार कला के संपर्क में आने के पूर्व बराबर व्यवहृत होते थे, इनमें पशु-पक्षियों के अतिरिक्त दोहरे छत वाले विहार, गवाक्ष वातायन, वेदिकाएं, कपि-शीर्ष, कमल, मणिमाला, पञ्चपट्टिका, घण्टावली, हत्थे या पंचाङ्गुलितल, अष्टमांगलिक चिह्न यथा पूर्णघट, भद्रासन, स्वस्तिक, मीन-युग्म, शराव-संपुट, श्रीवत्स, रत्न-पात्र व त्रिरत्न, आदि का समावेश होता है।

नवीन अभिप्रायों से तात्पर्य उन अभिप्रायों से है जो गांधार कला के संपर्क में आने के बाद मथुरा की कलाकृतियों में भी अपनाये गये। इनमें (corinthian flower) भटकटैया

[१] आनन्द कुमारस्वामी *HIIA*., पृ. ६५-६६, पादटिप्पणी १, पृ. ६६।

[२] लखनऊ संग्रहालय, संख्या जे. ५३३।

[3] आनन्द कुमारस्वामी, *HIIA*., पृ. ५०-५१, ६२।

का फूल, प्रभा मण्डल, मालधारी यक्ष, अंगूर की लता, मध्य एशियाई और ईरानी पद्धति के तावीज के समान अलंकार आदि की गणना की जा सकती है।

५. गांधार कला का प्रभाव

कुषाणों के शासन काल में उत्तर-पश्चिम भारत में कला की एक नवीन शैली चल पड़ी। यह भारतीय और यूनानी कला का एक मिश्रित रूप था। जिस गांधार प्रदेश में इसका बोलबाला रहा, उसी के आधार पर इसे गांधार कला के नाम से कला जगत् में पहचाना जाता है। एक ही शासन की छत्रछाया में पनपने के कारण इन शैलियों का परस्पर सम्पर्क में आना स्वाभाविक था। परन्तु दोनों के मूलभूत सिद्धान्त अलग थे। गांधार कला पर यूनानी कला का गहरा प्रभाव था। वह मानव-चित्रण के बहिरंग पक्ष को अधिक महत्त्व देती थी। इसके विपरीत भारतीय विचारधारा में पली हुई मथुरा कला भाव-पक्ष की ओर बढ़ती चली जा रही थी। फल यह हुआ कि गांधार कला से मथुरा के कलाकार कुछ सीमित अंश तक प्रभावित हुए। इसमें उन्होंने न केवल उनके निर्माण सिद्धान्त ही अपनाये, वरन् उनकी कुछ कथावस्तुओं को भी मूर्तरूप देने का प्रयत्न किया। उदाहरणार्थ यूनानी वीर हरक्यूलियस का नेमियन सिंह के साथ जो युद्ध हुआ था, उस दृश्य का चित्रण मथुरा कला में मिलता है।

तथापि यह भी सत्य है कि मथुरा की सम्पूर्ण कलाकृतियों में यूनानी प्रभाव दिखलाने वाली प्रतिमाओं की संख्या बड़ी ही अल्प है। इस प्रभाव को सूचित करने वाले अंश निम्नांकित हैं :

(१) बुद्ध और बोधिसत्त्वों की कुछ मूर्तियां जो अधोलिखित विशेषताओं से युक्त हैं—
   (क) अर्धवर्तुलाकार धारियों वाला वस्त्र, जिससे बहुधा दोनों कंधे और कभी-कभी पूरा शरीर ढंका रहता है (चित्र ४८)।
   (ख) मस्तक पर लहरदार बाल
   (ग) नेत्र और होंठ भरे हुए तथा धारदार, विशेषतया ऊपर की पलकें भारी रहती हैं।

(२) बुद्ध जीवन को अंकित करने वाले कतिपय दृश्य, जैसे, इस संग्रहालय की मूर्ति संख्या ००. एच १, ००. एच ७, ००. एच ११, ००. एन् २ आदि।

(३) कला के कुछ नवीन अभिप्राय, जैसे, मालधारी यक्ष, गरुड़, द्राक्षालता आदि।

(४) मदिरापान के दृश्य[१]।

[१] आनन्द कुमारस्वामी, *HIIA.*, पृ. ६२ ; एस. के. सरस्वती, *A Survey of Indian Sculpture*, कलकत्ता १९५७, पृ. ६६।

गांधार कला की एक सुन्दर नारी की मूर्ति जो हारिति,[१] कम्बोजिका[२] आदि नामों से पहचानी जाती है (चित्र–४३-४४), मथुरा क्षेत्र से ही मिली है, उसका उल्लेख इस संदर्भ नें आवश्यक है। संभव है कि गांधार कला की यह कलाकृति किसी प्रेमी ने यहां मंगवाकर स्थापित की हो।

६. बुद्ध, तीर्थंकर आदि मूर्तियों का प्रादुर्भाव

इसका विस्तृत विचार अगले अध्याय में करेंगे।

७. व्यक्ति-विशेष की मूर्तियों का निर्माण

भारतीय कला को मथुरा की यह विशेष देन है। भारतीय कला के इतिहास में यहीं पर सर्वप्रथम हमें शासकों की लेखों से अंकित मानवीय आकारों में बनी प्रतिमाएं दिखलाई पड़ती हैं।[3] कुषाण सम्राट वेमकटफिश, कनिष्क एवं पूर्ववर्ती शासक चष्टन की मूर्तियां माँट नामक स्थान से पहले ही मिल चुकी हैं। एक और मूर्ति जो संभवतः हुविष्क की हो सकती है, इस समय गोकर्णेश्वर के नाम से मथुरा में पूजी जाती है। ऐसा लगता है कि कुषाण राजाओं को अपने और पूर्वजों के प्रतिमा-मन्दिर या देवकुल बनवाने की विशेष रुचि थी। इस प्रकार का एक देवकुल तो माँट में था और दूसरा संभवतः गोकर्णेश्वर में। इन स्थानों से उपरोक्त लेखांकित मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य राजपुरुषों की मूर्तियां भी मिली हैं, पर उन पर लेख नहीं है।

इस संदर्भ में यह बतलाना आवश्यक है कि कुषाणों का एक और देवकुल, जिसे वहां बागोलांगो (bagolango) कहा गया है, अफगानिस्तान के सुर्ख कोतल नामक स्थान पर था। हाल में ही यहां की खुदाई से इस देवकुल की सारी रूपरेखा स्पष्ट हुयी है।[४]

१ कुमारस्वामी, *HIIA.*, पृ. ६२।

२ डा. वासुदेवशरण अग्रवाल उसे कम्बोजिका की प्रतिमा मानते हैं जिसका नाम सिंहशीर्ष पर अंकित लेख में मिलता है। उक्त सिंहशीर्ष और यह गांधार प्रतिमा मथुरा के एक ही स्थान से अर्थात् सप्तर्षि टीले से मिले थे।

3 व्यक्ति प्रतिमाओं के विशेष अध्ययन के लिए देखिये :
टी. जी. अर्वमुनाथन्, *Portrait Sculpture in South India*, लन्दन, १९३१।

४ सी. एस. कीफर, Kushan Art and the Historic Effigies of Mat and Surkh Kotal, मार्ग, खण्ड १५, संख्या २, मार्च, १९६२, पृ. ४३-४८।

४

कुषाण कला की प्रमुख देन—उपास्य मूर्तियों का निर्माण

मथुरा में इस समय तीन संप्रदाय प्रमुख थे—जैन, बौद्ध और ब्राह्मण। इनमें ब्राह्मण धर्म को छोड़कर किसी को भी मूलतः मूर्तिपूजा मान्य न थी, परन्तु मानव की दुर्बलता एवं अवलम्ब अथवा आश्रय खोजने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण शनैः-शनैः इन संप्रदायों के आचार्य स्वयं ही उपास्य देव बन गये। साथ ही साथ उपासना के प्रतीकों का भी प्रादुर्भाव हुआ। ई. पू. द्वितीय शताब्दी के पहले से ही बुद्ध के प्रतीक जैसे, स्तूप, भिक्षापात्र, उष्णीश, बोधिवृक्ष, आदि लोकप्रिय हो गये थे। जैन समाज में भी चैत्यस्तम्भ, चैत्य-वृक्ष, अष्ट माङ्गलिक चिह्न आदि प्रतीकों को मान्यता मिल रही थी। कुषाणकाल तक पहुँचते पहुँचते इन प्रतीकों के स्थान पर प्रत्यक्ष मूर्ति की संस्थापना की इच्छा बल पकड़ने लगी और अल्प काल में ही माथुरी कला ने तीर्थंकर मूर्तियों और बौद्ध मूर्तियों को जन्म दिया। इसी के साथ साथ विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य, कुबेर, आदि ब्राह्मण धर्म की उपास्य मूर्तियाँ भी इसी समय बनीं। भारतीय कला को मथुरा कला की यह सबसे बड़ी देन है। गुप्त और गुप्तोत्तर कला के विशाल प्रतिमा-संग्रह का आधार कुषाणकला में है।

तीर्थंकर-प्रतिमा का जन्म

जैनों की प्रारम्भिक पूजा पद्धति में निम्नांकित प्रतीकों का स्थान महत्त्वपूर्ण था—धर्म-चक्र, स्तूप, त्रिरत्न, चैत्यस्तम्भ, चैत्य-वृक्ष, पूर्णघट, श्रीवत्स, शराव-संपुट, पुष्प-पात्र, पुष्प-पडलग, स्वस्तिक, मत्स्य-युग्म, व भद्रासन। इनके यहाँ अर्चा का एक दूसरा प्रतीक था आयागपट्ट। आयागपट्ट एक चौकोर शिलापट्ट होता था जिस पर या तो एकाधिक प्रतीक बने रहते थे या प्रतीकों के साथ तीर्थंकर की छोटी सी प्रतिमा भी बनी रहती थी। इनमें से कुछ लेखांकित हैं जिनसे पता चलता है कि ये पूजन के उद्देश्य से स्थापित किये जाते थे। मथुरा के इस प्रकार के कुषाणकालीन कई सुन्दर आयागपट्ट मिले हैं। इनमें से एक समूचा आयागपट्ट तथा तीर्थंकर-प्रतिमा से शोभित दूसरा खंडित आयागपट्ट जो इस संग्रहालय में विद्यमान है, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। समूचे वाले आयागपट्ट पर एक जैनस्तूप, उसका तोरण

द्वार, सोपान मार्ग और दो चैत्यस्तंभ बने हैं जिन पर क्रमशः धर्मचक्र और सिंह की आकृतियाँ बनी हैं। सिंह का संबंध तीर्थंकर महावीर से है (चित्र २६)।

तीर्थंकर प्रतिमा के सर्वप्रथम दर्शन हमें आयागपट्टों पर ही होते हैं। यह कहना कठिन है कि तीर्थंकर की प्रतिमा एवं बुद्ध की मूर्ति इन दोनों में प्रथम कौन बनी होगी। कदाचित् यह दोनों कार्य साथ ही साथ हुए थे।

मथुरा में कंकाली टीले पर जैनों का बहुत बड़ा गढ़ था। यहाँ उनके विहार और स्तूप विद्यमान थे। यहीं से तीर्थंकरों की प्रारम्भिक प्रतिमाएं मिली हैं। इन मूर्तियों की मुख्य विशेषताएं अधोलिखित हैं :

१. ये मूर्तियाँ केवल दो ही प्रकार की हैं, एक तो पद्मासन बैठी हुई ध्यानस्थ मूर्तियाँ, और दूसरी जाँघ से हाथों को सटाकर सीधी खड़ी प्रतिमाएं जिन्हें कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित प्रतिमाएं कहा जाता है।

२. तीर्थंकरों के मस्तक या तो मुण्डित हैं या छोटे-छोटे घुंघराले केशों से अलंकृत हैं। आँखों की पुतलियाँ साधारणतः नहीं दिखाई जाती थीं पर बाद के कलाकारों ने इस कमी को दूर करने के लिए अपने समय में कुछ कुषाणकालीन मूर्तियों में आँखें बनाई हैं।

३. तीर्थंकरों के कान कन्धों तक लटकने वाले नहीं हैं और मुख पर भी कोई विशेष भाव लक्षित नहीं होता।

४. महापुरुष के बोधक चिह्नों में हथेलियों पर धर्मचक्र और पैर के तलुओं पर त्रिरत्न और धर्मचक्र दोनों बने रहते हैं। वक्षस्थल पर बीचोंबीच श्रीवत्स चिह्न बना रहता है। कुछ प्रतिमाओं में हाथ की उंगलियों के पोर पर भी श्रीवत्सादि मंगलचिह्न बने हैं। लगता है कि यहाँ बुद्ध बोधिसत्त्व मूर्तियों की नकल की गई है।[1]

५. उत्तरकाल में दिखलाई पड़ने वाले तीर्थंकरों के लांछन या परिचय-चिह्नों का यहाँ अभाव है। इसलिये प्रत्येक तीर्थंकर की अलग-अलग पहचान करना कठिन है। आदिनाथ या ऋषभनाथ कंधों पर लहराती हुई बालों की लटाओं के कारण तथा पार्श्वनाथ मस्तक के पीछे दिखलाई पड़ने वाले सर्पफणाओं के कारण पहचाने जा सकते हैं। तीर्थंकर नेमिनाथ की कुछ मूर्तियाँ उन पर बनी हुई कृष्ण बलराम की मूर्तियों के कारण पहचानी जा सकती हैं। शेष मूर्तियों के नाम, यदि वे लेखांकित हैं तो, उनके लेखों से ही जाने जा सकते हैं।

६. तीर्थंकर प्रतिमाएं दिगम्बर हैं। क्वचित मूर्तियों पर वस्त्र का एक छोटा टुकड़ा हाथ में पकड़े जैन साधु भी दिखलाई पड़ते हैं।[2]

७. आसनस्थ तीर्थंकर बहुधा सिंहासनों पर बैठे दिखलाये गये हैं जो उनके चक्रवर्तित्व का बोधक है।

[1] नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा कला में मांगलिक चिह्न, आज, वाराणसी, १६ फरवरी, १९६४।

[2] ये अर्धफालक सम्प्रदायक के उपासक हैं—लखनऊ संग्रहालय संख्या जे. १२, जे. १४, जे. ६२३.

८. कुषाणकालीन तीर्थंकर मूर्तियों के पीछे अर्धचन्द्रावलि या हस्तिनख से शोभित किनारे वाला प्रभामण्डल दिखलाई पड़ता है।[१] समकालीन बुद्ध व बोधिसत्त्व प्रतिमाओं में भी इसके दर्शन होते हैं।

कुषाणकाल से ही तीर्थंकर प्रतिमा का एक और प्रकार चल पड़ा जो चौमुखी मूर्ति या सर्वतोभद्र-प्रतिमा के नाम से पहचाना जाता है। इस प्रकार की मूर्तियों में एक ही पाषाण के चारों ओर चार तीर्थंकर प्रतिमाएं बनी रहती हैं। इनमें बहुधा एक ऋषभनाथ व दूसरी पार्श्वनाथ की रहती है (चित्र ४१)। इस प्रकार की चतुर्मुख प्रतिमा बनाने की पद्धति परवर्तिकाल में ब्राह्मण धर्म द्वारा भी अपनायी गई।

जैनधर्म की देव और देवी प्रतिमाएं

मथुरा की कुषाणकला में अधोलिखित जैन प्रतिमाएं मिली हैं:

(१) नेगमेश या हरिनेगमेशी

बकरे के मुख वाले इस देवता का शिशु जगत् से सम्बन्ध है। यह महत्त्व की बात है कि कुषाणकाल के बाद जैन मन्दिरों में इस देवता के स्वतंत्र रूप से स्थापित किये जाने के उदाहरण नहीं मिलते[२] और न उसकी प्रतिमाओं की बहुलता ही दिखलाई पड़ती है। कुषाण-कालीन माथुरी प्रतिमाओं में हम उन्हें बहुधा बच्चों से घिरा हुआ पाते हैं।

(२) रेवती या षष्ठी

नेगमेश के समान इस देवी का सम्बन्ध बच्चों से है। इसका भी मुख बकरे का ही है। मथुरा संग्रहालय में कुछ ऐसी स्त्री मूर्तियाँ हैं जिनकी गोद में पालना है। इसमें एक शिशु भी दिखलाई पड़ता है (सं० सं० ०० ई. ४)।[३] इन्हें रेवती या षष्ठी की मूर्तियाँ माना गया है।[४]

(३) सरस्वती

यह जैनों की भी देवता है। जैन सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति मथुरा के कंकाली टीले से मिली है जो इस समय लखनऊ के संग्रहालय में है (लखनऊ सं. सं. जे. २४)।

[१] लखनऊ संग्रहालय संख्या जे. ८; जे. १५।

[२] उमाकान्त शाह, Harinegameshin, *JISOA.*, लन्दन, खण्ड १९, १९५२-५३, पृ. २२।

[३] वासुदेवशरण अग्रवाल, The Presiding Deity of Child Birth etc., *Jain Antiquary*, मार्च १९३७, पृ. ७५-७९।

[४] उमाकान्त शाह, Harinegameshin, *JISOA.*, खण्ड १९, १९५२-५३, पृ. ३७।

(४) कृष्ण बलराम

तीर्थंकर नेमिनाथ के पार्श्ववर्ती देवताओं के रूप में इनका अङ्कन किया जाता है। कृष्ण चतुर्भुज हैं। बलराम हाथ में मदिरा का चषक लिये हुए हैं, उनके मस्तक पर नागफण हैं (चित्र ६६)।

बुद्ध प्रतिमा का निर्माण

पश्चिम के विद्वानों ने भारतीय कला का जब अध्ययन किया तब उन्होंने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया कि सर्वप्रथम बुद्ध की मूर्ति कुषाणकाल में गांधार शैली के कलाकारों द्वारा बनाई गई। भारतीय विद्वानों ने इस सिद्धांत में कई त्रुटियां देखीं और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्ध की प्रथम प्रतिमा गांधार में नहीं अपितु मथुरा में बनी। उनकी इस धारणा का प्रमुख आधार बुद्ध-बोधिसत्त्वों की वे लेखांकित प्रतिमाएं हैं जिन पर स्पष्टतया कनिष्क के राज्य-संवत्सर का उल्लेख है। गांधार कला में इस प्रकार की सुनिश्चित तिथियों से युक्त लेखांकित प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव है। इसके अतिरिक्त देश की तत्कालीन स्थिति व धार्मिक अवस्था भी इसी ओर संकेत करती है कि प्रथम बुद्ध मूर्ति मथुरा में ही बनी होगी न कि गांधार में। संक्षेप में उस समय की स्थिति को यों समझा जा सकता है।

ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व मथुरा में वैष्णव धर्म व उससे सम्बन्धित भक्ति संप्रदाय जोर पकड़ चुका था। महाक्षत्रप शोडास के समय में ही यहां वासुदेव का मन्दिर था और बलराम अनिरुद्धादि पंचवीरों की प्रतिमाओं का पूजन समाज में प्रचलित था। दूसरी ओर जैन आचार्यों की मूर्तियां गढ़ी जा रही थीं और वहाँ भी भक्ति संप्रदाय बल पकड़ रहा था। रहा बौद्ध समाज, इनमें पुष्पदीपादि द्वारा बुद्ध के प्रतीकों का पूजन तो प्रचलित था ही, केवल निराकार तथागत की साकार प्रतिमा का अभाव था। इस अभाव को दूर करने में महासांघिक मत के बौद्धों ने बड़ी सहायता की।

बौद्धों के धार्मिक जगत् में इस समय मतभेद चल रहा था। कुछ लोग प्राचीन बातों को अपरिवर्तित रूप में ही मानना उचित समझते थे, पर दूसरा संप्रदाय परिवर्तनवादी था जो महासांघिक नाम से प्रसिद्ध था। आगे चलकर यह दोनों मत हीनयान और महायान के नाम से पहिचाने जाने लगे। महासांघिक लोगों ने बुद्ध की निराकार मूर्ति व उसका पूजन उचित माना। उनका कहना था कि निर्वाण प्राप्ति के पूर्व बुद्ध बोधिसत्त्व के नाम से पहिचाने जाते हैं। निर्वाण के उपरान्त पुनः कोई इस लोक में नहीं आता। बुद्ध ने संबोधि या ज्ञान तो प्राप्त कर लिया था पर निर्वाण को पाना इसलिये अस्वीकार किया कि वे लोगों के कल्याण के लिए बार-बार पृथ्वी पर अवतीर्ण हो सकें। अतः निर्वाण-प्राप्त बुद्ध की तो नहीं, पर संबोधि-प्राप्त बोधिसत्त्व की प्रतिमा बनाना अवैध नहीं क्योंकि वे साकार रूप में मनुष्यों और देवों के द्वारा देखे और पूजे जाते हैं। कदाचित् इसीलिये प्रारंभिक बुद्ध मूर्तियों पर अङ्कित लेखों में उन्हें बोधिसत्त्व ही कहा गया है।

आगे चलकर महायानवादियों ने एक बुद्ध प्रतिमा ही नहीं अपितु शताधिक देवी देवताओं की मूर्तियों के निर्माण और पूजन की पद्धति को अपनाया।

कुषाण सम्राट् कनिष्क का शासन काल भी बुद्ध की प्रतिमा निर्माण के लिए प्रेरक हुआ। इस शासक ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता के प्रदर्शन के लिए अपनी मुद्राओं पर विभिन्न धर्म के देवी देवताओं को स्थान दिया। शैवों का शिव, ब्राह्मण धर्म के चन्द्र, सूर्य, वायु, आदि अन्य देव तथा ईरानी मत के देवगणों में एतशो, नाना आदि को इसके सिक्कों पर अङ्कित किया जा रहा था। इन्हीं के साथ उसने बुद्ध की मूर्ति से भी अपनी कुछ मुद्राएं सुशोभित कीं।

गांधार कला के बुद्ध मूर्तियों की तिथि विषयक अनिश्चितता की ओर हम पहले संकेत कर चुके हैं। मथुरा में कनिष्क के राज्यारोहण के दूसरे वर्ष से ही बुद्ध प्रतिमा का निर्माण प्रारम्भ हुआ, जो बाद तक चलता रहा।

बुद्ध प्रतिमा के निर्माण के आधार[१]

बुद्ध की खड़ी मूर्ति की कल्पना यक्ष प्रतिमाओं के आधार पर की गई। इन यक्ष प्रतिमाओं का उल्लेख हम कर चुके हैं, जो इस समय के पहिले से ही लोककला में बन रही थीं। बैठी हुई बुद्ध मूर्ति का आधार कदाचित् भरहूत कला में दिखलाई पड़ने वाली दीर्घतापसी की मूर्ति है। कछ विद्वान इसका आधार उन तीर्थंकर प्रतिमाओं को मानते हैं जिनका अंकन जैन आयागपट्टों पर हुआ है।[२]

बुद्ध के बालों का अंकन निदान कथा के आधार पर हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में बुद्ध का मस्तक मुण्डित होता है और केवल एक ही लट ऊपर दाहिनी ओर घूमती हुई दिखलाई पड़ती है। बाद में तो सारा मस्तक ही छोटे-छोटे घुंघरों से आवृत होने लगता है। उनके मस्तक के पीछे दिखलाई पड़ने वाले प्रभामण्डल का उद्भव कदाचित् उन ईरानी देवी-देवताओं की मूर्तियों से हुआ जिन्हें वहाँ 'यजत' के नाम से पहिचाना जाता है। कुषाण मुद्राओं पर अंकित इन देवताओं की मूर्तियों में प्रभामण्डल विद्यमान है।

चीवर, संघाटी आदि बुद्ध के वस्त्रों की कल्पना तो प्रत्यक्ष जगत् से ही ली गई होगी। वैसे विनय पिटक में भी इसका विस्तृत विवरण मिलता है।[3] बुद्ध के पैरों के नीचे दिखलाई पड़ने वाला कमल कदाचित सांची की कलाकृतियों की देन है।

[१] प्रस्तुत विवेचन के आधार निम्नांकित हैं—
(क) आनन्द कुमारस्वामी—*HIIA.*, पृ. ५२, ५३, ६२।
(ख) डा. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखाई गई टिप्पणियां जो अभी अप्रकाशित हैं।

[२] ए. एल. बाशम, *The Wonder That Was India*, पृ. ३६७।

[3] महावग्ग, ८ चीवरक्खन्धकम्।

प्रारम्भिक बुद्ध प्रतिमाओं की विशेषताएं[1]

इस प्रकार धर्माचार्य, शासन, कलाकार व तत्कालीन जनता के सहयोग से जो प्रारम्भिक बुद्ध मूर्तियाँ कुषाण काल में बनीं उनमें निम्नांकित विशेषताएं देखी जा सकती हैं—

१–मुण्डित मस्तक, ऊपर कपर्द तथा घुमावदार एक लट से शोभित उष्णीष।

२–उर्णा या दोनों भोंहों के बीच बना हुआ एक छोटासा वर्तुलाकार चिह्न। महापुरुष के बत्तीस लक्षणों में इसकी गिनती है।[2] ललितविस्तर के वर्णनानुसार मार पराजय के समय बोधिसत्त्व की उर्णा से एक ज्योति उद्‌भूत हुई जिसने मार के प्रसादों को कंपित कर दिया[3]। कुषाणकालीन बुद्ध मूर्तियों में ऊर्णा चिह्न अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। एक मूर्ति में (सं. सं. ०० ए. २७) ऊर्णा के स्थान पर अर्थात् भ्रूमध्य में गड्ढा बना है जिसमें कदाचित् प्रकाश का प्रतीक कोई रत्न जड़ा गया हो।

३–विशाल एवं चौड़ी छाती तथा एक, बहुधा बाँया, कन्धा वस्त्र से ढंका हुआ[4]।

४–दाहिना हाथ अभयमुद्रा में ऊपर उठा हुआ; बांया हाथ आसनस्थ मूर्तियों में जाँघ पर तथा खड़ी प्रतिमाओं में वस्त्र के छोर को पकड़ मुट्ठी बाँधे हुए।

५–शरीर में चिपका हुआ तथा बायें कंधे एवं निचले भाग पर सिकुड़नों से शोभित वस्त्र।

६–कमर में गाँठ पड़ी हुई पट्टी या कायबन्धन।

७–पूरी खुली हुई आँखें तथा स्मितयुक्त मुख।

८–आध्यात्मिक भाव एवं देवत्व के प्रगटीकरण की अपेक्षा शारीरिक भाव भंगिमा के चित्रण का आधिक्य।

९–दोनों पैरों का समान रूप से सीधे तने रहना। कभी कभी उनके बीचों बीच कमल कलियों का गुच्छ[5], क्वचित स्त्री मूर्ति[6], सिंह[7] अथवा मैत्रेय बोधिसत्त्व[8] का बना रहना।

१०–हस्तिनखों से युक्त प्रभामण्डल।

[1] देखिये—आनन्द कुमारस्वामी, *HIIA.*, पृ. ५७, *Age of the Imperial Unity*, खण्ड २, पृ. ५२२-२३ वासुदेवशरण अग्रवाल, Buddha and Bodhisatta Images, *JUPHS.*, खण्ड २१, पृ. ७७।

[2] **ललितविस्तर**, ७, पृ. ७४ ऊर्णा····भ्रुवोर्मध्ये जाता हिमरजतप्रकाशा।

[3] वही, २१, पृ. २१८, सर्वमारमण्डलविध्वंसनकरीं नामैकां रश्मिमुदसृजत्।

[4] वही, ३, पृ. ११, एकांसमुत्तरासंगंकृत्वा।

[5] मथुरा संग्रहालय संख्या ३८.२७९८, प्रयाग संग्रहालय संख्या के. १।

[6] बम्बई संग्रहालय की मूर्ति *JBORS.*, *XX*, १९०२, पृ. २६९।

[7] बोधिसत्त्व प्रतिमा, सारनाथ संग्रहालय।

[8] राधाकुमुद मुकर्जी, Notes on Early Indian Art, *JUPHS.*, खण्ड १२, भाग १, पृ. ७० के सामने वाला चित्र; लखनऊ संग्रहालय संख्या ओ. ७१।

गांधार कला के संपर्क में आने के बाद कतिपय मूर्तियों के गढ़न में कुछ परिवर्तन हुये जिनका विवेचन पहले हो चुका है।[1]

उत्तर कुषाणकाल में आसनस्थ मूर्ति के गढ़ने में शैली अधिक सुधरी हुई है। चीवर तथागत के दोनों कंधों पर पड़ा रहता है। साथ ही दोनों पैर भी वस्त्र में छिपे रहते हैं और वस्त्र का सामने वाला छोर चौकी पर लटकता दिखलाई पड़ता है। जैन तीर्थंकरों के समान बुद्ध की चरण चौकी के सामने वाले भाग पर दाताओं की मूर्तियों का अंकन अब प्रारम्भ हो जाता है। शनैः-शनैः मुण्डित मस्तक लुप्त होकर घूंघरों का निर्माण साधारण परिपाटी बन जाती है। इस काल की बुद्ध व बोधिसत्त्व प्रतिमाओं के हाथ केवल चार मुद्राओं में–अभय, भूमिस्पर्श ध्यान तथा धर्म-चक्र-प्रवर्तन में दिखलाई पड़ते हैं। पांचवीं मुद्रा वरद का यहां सर्वथा अभाव है।[2]

ब्राह्मण धर्म की देव प्रतिमाओं का निर्माण

कुषाणकला के पुजारियों ने जैन तथा बौद्ध धर्मों के समान ही ब्राह्मण धर्म की भी सेवा की। वैष्णव, शाक्त व सौर संप्रदाय ब्राह्मण धर्म के प्रमुख अंग हैं। शैवों को उसी के अन्तर्गत माना जाता है। गुप्तकाल तक पहुँचते पहुँचते इसमें गणेश उपासकों का भी गाणपत्य के नाम से समावेश हुआ। इस प्रकार विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य व गणपति की उपासना पंचदेवोपासना के नाम से प्रसिद्ध हुई। ललितविस्तर एवं अन्य ग्रन्थों में, जो कुषाणकाल में विद्यमान थे, ब्राह्मण धर्म के तत्कालीन देवी-देवताओं की मूर्तियों की एक तालिका मिलती है जिसमें शिव, स्कन्द, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्म, नारायण, वैश्रवण, कुबेर, शक्र व लोकपाल की प्रतिमाओं को प्रमुखता से गिनाया गया है[3]। इनमें लगभग सभी की मूर्तियाँ कुषाणकाल में उपलब्ध हैं। कुषाणकाल में गणपति की उपासना मूर्ति-रूप में कदाचित् अधिक प्रचलित नहीं थी, पर इसके स्थान पर कार्तिकेय, व कुबेर खूब पूजे जाते थे। ब्रह्मा की केवल इनी-गिनी मूर्तियाँ मिली हैं। इन सभी देवमूर्तियों की अपनी विशेषताएं हैं। इनमें से अधिकतर प्रतिमाएं दोनों ओर (in round) उकेरी गई हैं। पीछे की ओर या तो मूर्ति का पृष्ठ भाग अङ्कित है अथवा वृक्ष बना हुआ है जिस पर गिलहरी, तोता आदि बैठे हुए दिखलाये गये हैं (चित्र ३९,५५,६०)।

विष्णु मूर्ति

वैष्णव संप्रदाय की पंचवीर प्रतिमाओं का उल्लेख पहिले ही हो चुका है। दुर्भाग्य से ये प्रतिमाएं खण्डित अवस्था में मिली हैं। अतः उनके विषय में कुछ अधिक नहीं कहा जा

[1] देखिये अध्याय ३, पृ. १४।

[2] कृष्णदत्त वाजपेयी, The Kuishna Art of Mathura, **मार्ग,** खण्ड ९ संख्या २, मार्च १९६२, पृष्ठ २८।

[3] **ललितविस्तर,** ८, पृ. ८४। **दिव्यावदान,** २७, ३८; पृ. ४९३-९४।

सकता। पर इस काल की बनी चतुर्भुज विष्णु की अखण्डित प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं जो अपनी अधोलिखित विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण हैं :

१–हाथों के डौल की दृष्टि से ये मूर्तियाँ समकालीन यक्ष और बोधिसत्त्व प्रतिमाओं से मिलती जुलती है। इनके हाथ चार हैं, पर तीन में गदा, चक्र व छोटा-सा जलपात्र या शंख हैं और चौथा अभय मुद्रा में कन्धे तक उठा हुआ है।

२–विष्णु चतुर्भुज तो हैं पर उनका प्रभामण्डल, हृदय का कौस्तुभ, गले की वनमाला आदि का अभी कोई उद्भव नहीं हुआ है।

३–गदा का आकार मुद्गर जैसा है तथा उसे पकड़ने की पद्धति भी अविकसित शैली की ओर संकेत करती है।

४–बुद्ध और बोधिसत्त्वों की समकालीन प्रतिमाओं में दिखलाई पड़ने वाला ऊर्णा चिह्न यहां भी विद्यमान है।

५–विष्णु के अवतारों से सम्बन्धित मूर्तियां इस काल में बहुत कम बनीं। हमारे संग्रह में इस प्रकार की केवल दो मूर्तियां हैं जिनका विवेचन आगे यथा स्थान किया जावेगा।

६–गरुड़ारूढ़ विष्णु की प्रतिमा का निर्माण भी इस काल से प्रारम्भ हो गया था[1] (चित्र ६३)।

७—अष्टभुज विष्णु की मूर्तियाँ भी शनैः-शनैः प्रचार में आ रही थीं।[2]

शिवमूर्ति

पूजन के लिए शिव की पुरुषाकार प्रतिमा तथा लिंग दोनों प्रचलित थे। शिवलिंग का पूजन विदेशी लोग भी करते थे और आज के समान कभी-कभी पीपल के पेड़ों के नीचे इन लिंगों की स्थापना की जाती थी। इस काल की कलाकृतियों में ये दृश्य विद्यमान हैं।[3] साधारण लिंगों के अतिरिक्त एकमुखी लिंग भी बनाये और पूजे जाते थे।[4]

शिवलिंग के समान शिव की पुरुषाकार प्रतिमाएं भी लोकप्रिय हो रही थीं। कुषाण सम्राट् विम के समय से अन्तिम शासक वासुदेव तक कितने ही कुषाण सिक्के शिव की प्रतिमा से अंकित होते रहे। पाषाण कलाकृतियों में निम्नांकित विशेषताओं के साथ शिवमूर्ति के दर्शन होते हैं।

[1] सं. सं. ५६.४२००।

[2] सं. सं. ५०.३५५०; लखनऊ संग्रहालय संख्या ४६.२१७।

[3] सं. सं. ३६.२६६१, लखनऊ संग्रहालय संख्या बी १४१।

[4] राज्य संग्रहालय, भरतपुर (राजस्थान) में उत्तर शुंग या प्रारम्भिक कुषाण-काल का एक बड़ा-सा एक मुख शिवलिंग है। लखनऊ संग्रहालय में भी एक ऐसा ही सुन्दर लिंग है (संख्या एच. २)। हाल ही में एक कुषाण कालीन चतुर्मुख लिंग का पता लगा है, जिस पर ऊर्ध्व-मेढ़् लकुलीश और विष्णु बने हैं—रत्नचन्द्र अग्रवाल, Interesting Terracottas and Sculptures, *Indian Historical Quarterly*. दिसम्बर १९६२, पृ. २९२-९३।

१–एकमुखी शिवलिंग में केवल मुखमण्डल और जटाभार दिखलाई पड़ता है। शिव का तीसरा नेत्र ललाट पर दिखलाया जाता है पर इस काल में वह सदा आड़ा बना रहता है खड़ा नहीं।

२–कुषाणकाल तक शिव के मुख्य चिह्न बैल, जटाभार, तीन नेत्र व त्रिशूल यही दृष्टिगोचर होते हैं। साँप, चन्द्रमा, व्याघ्राम्बर, डमरू, गंगा आदि बातों का यहां अभाव है।

३–अकेले शिव के अतिरिक्त उनका शक्ति के साथ अर्धनारीश्वर के रूप में भी पूजन होता था (सं. सं. १५.८७४)। इस प्रकार की मूर्तियां मथुरा में मिलती हैं, जिनमें शिव को ऊर्ध्व-मेढ़् स्थिति में विशेष रूप से दिखलाया गया है। यह उनकी अमोघ उत्पादन शक्ति एवं चिर-स्थायित्व का द्योतक है।

४–शिव और पार्वती की स्वतंत्र प्रतिमाएं भी मथुरा कला में प्राप्य हैं।[1]

शक्ति प्रतिमाएं

देवी की मूर्तियों में लक्ष्मी, महिषमर्दिनी दुर्गा व मातृकाओं की मुख्यतः गणना की जा सकती है। इनके अतिरिक्त हारीति व वसुधारा की प्रतिमाएं भी मिलती हैं।

लक्ष्मी और गजलक्ष्मी की प्रतिमा तो भरहूत और सांची से ही चली आ रही थी[2] और ब्राह्मण धर्म के समान बौद्धों के यहां भी समादृत हो चुकी थी। मथुरा ने थोड़े परिवर्तनों के साथ उसे अपनाया। यहां हमें लक्ष्मी के तीन रूप मिलते हैं :

१–एक हाथ में कमल धारण करने वाली आसनस्थ लक्ष्मी। यह बहुधा द्विभुज होती है।

२–उसी प्रकार की खड़ी प्रतिमा।

३–गज लक्ष्मी, एक हाथ में कमल लिये खड़ी।

४–पूर्ण कुंभ से उद्भूत होने वाली श्रीपर्णीलता या कमल लता के बीच खड़ी मातृत्व का संकेत करने वाली श्री देवी।

दुर्गा के रूपों में यहां केवल चतुर्भुज दुर्गा का रूप मिलता है। उसके ऊपरी हाथों में तलवार और ढाल है, निचले दाहिने हाथ में त्रिशूल है और निचले वांयें हाथ से वह महिष को दबा रही है। असुर भी पशु रूप में ही है, मानव-पशु के रूप में नहीं। दुर्गा के आठ हाथ, दस हाथ और अठारह हाथ वाले रूप बाद में बने, कुषाण काल में वे नहीं दिखलाई पड़ते।[3]

[1] यह मूर्ति कौशाम्बी से मिली है—*ASIR.*, १९१३-१४, फलक ७० बी; गांधार कला में भी शिव प्रतिमाएं मिली हैं—वी. नटेश ऐयर, Trimurti Image, *ASIR.*, १९१३-१४, पृ. २७६-८०, फलक ७२ ए।

[2] वेणीमाधव बरुआ, *Barhut*, चित्र संख्या २३, ८०, ८० बी, आदि ; जान मार्शल, *The Monuments of Sanchi*, फलक ११, १३, २५ आदि।

[3] अधिक अध्ययन के लिए देखिये, रत्नचन्द्र अग्रवाल, The Goddess Mahishāsura-mardini in Kushāṇa Art, *Artibus Asiae*, खण्ड १९, ३-४ अस्कोना, स्विट्जरलैण्ड, पृ. ३९८-७३।

मातृकाओं का कुषाणकाल में पर्याप्त बोलबाला रहा। कुषाण कालीन जो मातृकापट्ट हमें मिला है, उस पर अंकित देवियां मानव मुखों से नहीं अपितु पशुपक्षियों के मुखों से युक्त हैं और प्रत्येक की गोद में एक शिशु है। उनकी संख्या भी अनिवार्यतः सात नहीं है।

अन्य देवियों में देवी हारीति का स्थान मुख्य है। इनकी कुषाणकालीन प्रतिमाएं अच्छी मात्रा में उपलब्ध हुई हैं जिनमें ये बच्चों से घिरी हुई अकेली अथवा कुबेर के साथ दिखलाई पड़ती हैं।

वसुधारा संपन्नता और ऐश्वर्य की देवी मानी जाती है। पूर्णघट व मत्स्य-युग्म इसके मुख्य चिह्न हैं। मथुरा में इस देवी का पूजन भी पर्याप्त लोकप्रिय था। पाषाण के साथ-साथ मिट्टी की बनी हुई इसकी अनेक मूर्तियां यहां से मिली हैं।

सूर्य प्रतिमाएं

सूर्य का पूजन दो प्रकार से किया जाता है। एक तो मण्डलाकार विम्ब का पूजन और दूसरे मानवरुपिणी सूर्य-प्रतिमा का पूजन। सूर्य की भारतीय पद्धति की नराकार प्रतिमा, जिसे कुषाणकाल के पूर्व की माना जाता है, बुद्ध-गया से मिली है। वह रथारूढ़ है। परन्तु यह रूप भारत में विशेषकर कुषाणकाल में लोकप्रिय न हो सका। इसका कदाचित् यह भी कारण था कि मानवाकार सूर्य की उपासना हमारे यहां मुख्यतः ईरान से आई। ये विदेशी लोग, जिन्हें भारतीय साहित्य में मग नाम से पुकारा गया, अपने साथ सूर्योपासना की पद्धति ले आये। इन्हीं के वेश के समान इनके देवताओं की वेश-भूषा होना स्वाभाविक था। इसलिये कुषाणकाल की सूर्यमूर्तियां लम्बा कोट, चुस्त पाजामा और ऊंचे बूट पहने हुए दिखलाई पड़ती हैं। इस वेश को भारत में उदीच्य वेश के नाम से पुकारा गया। कुषाणकालीन माथुरी कला में रथारूढ़ एवं आसनारूढ़ सूर्य की लम्बा कोट, बूट, गोल टोपी तथा इने-गिने अलंकार धारण की हुई प्रतिमाएं मिली हैं। एक मूर्ति में उनके छोटे पंख भी दिखलाये गये हैं (सं. सं. डी.४६); दूसरी में उनके आसन पर ठीक वैसी ही अग्नि की वेदी बनी है जैसी कतिपय ईरानी सिक्कों पर पायी जाती हैं।

अन्य प्रतिमाएं

ऊपर गिनाई हुई मूर्तियों के अतिरिक्त कार्तिकेय, कुबेर, इन्द्र व अग्नि की मूर्तियां भी कुषाणकाल में बनीं। अन्य देवताओं के समान इन देवताओं के ध्यान कुषाणकाल में बड़े ही सीधे सादे थे। कार्तिकेय का मुख्य चिह्न था शक्ति या भाला। एक मुख द्विभुज, शक्तिधर कुमार कार्तिकेय की सुन्दर प्रतिमा इस संग्रहालय में है जो शक संवत् ११ अर्थात् ई. सन् ८९ में बनी थी (सं. सं. ४२.२९४९)।

कुबेर की मूर्तियों का मथुरा में वैपुल्य है। मोटे पेट वाले स्थूलकाय धन के देवता कुबेर देखते ही बनते हैं। कभी वे पलथी मार कर सुख से स्मित करते हुए बैठे दिखलाई पड़ते हैं,

कभी मदिरा का चषक हाथ में लिये रहते हैं और कभी लक्ष्मी एवं हारीति के साथ एक ही शिलापट्ट पर शोभित रहते हैं।

अग्नि की मुख्य पहिचान उनकी तुंदिल तनु, यज्ञोपवीत, जटाभार व पीछे दिखलाई पड़ने वाली ज्वालाएं हैं (सं.सं. ४०.२८८०, ४०.२८८३)। इनके विशेष आयुध, वाहन मेष आदि बातें कुषाणकालीन मूर्तियों में नहीं दिखलाई पड़ती।

इन प्रमुख देवी-देवताओं के अतिरिक्त माथुरी कला में नाग, व नाग-स्त्रियों की प्रतिमाएं भी अच्छी मात्रा में मिलती हैं। कुषाणकाल में यहां पर दधिकर्ण नाग का मन्दिर विद्यमान था। इस नाग की लेखांकित प्रतिमा यहां से मिली है। नाग प्रतिमाओं में अन्य नागों के अतिरिक्त बलराम की मूर्तियों को भी गिनना होगा। पुराणों के अनुसार बलराम शेषावतार थे। उनकी हल और मूसल को धारण करने वाली एक शुंगकालीन मूर्ति यहां से मिली है। यह इस समय लखनऊ के संग्रहालय में है। कुषाणकालीन बलराम की मूर्तियों में वे हाथ में मद्य का प्याला लिये दिखलाई पड़ते हैं, गले में वनमाला पड़ी रहती है, पीछे सर्प की फणा बनी रहती है। इस पर कभी-कभी स्वस्तिक, मत्स्ययुग्म, पूर्णघट आदि अष्टमांगलिक चिह्न भी बने होते हैं।[1]

साधारणतया यहां नाग की प्रतिमाएं मनुष्याकार ही होती हैं, केवल मस्तक के ऊपर सर्पफणा बनी रहती है। हाथ में बहुधा छोटा सा जल कुंभ रहता है। नाग-स्त्रियों की मूर्तियों भी लगभग ऐसी ही होती हैं। एक विशेष मूर्ति ऐसी भी मिली है जिसमें एक नागरानी के कंधों से पांच अन्य नाग शक्तियां उद्‌भूत होती हुई दिखलाई गई हैं।

इस प्रकार धर्म निरपेक्ष भाव से नास्तिक एवं आस्तिक दोनों प्रकार के संप्रदायों की सेवा करते हुए कला के एक ऊंचे आदर्श की स्थापना करना माथुरी कला का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है।

[1] नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा कला में मांगलिक चिह्नों का प्रयोग, आज, वाराणसी, १६ फरवरी, १९६४।

५

कुषाण-गुप्त, गुप्त व गुप्तोत्तरकालीन मथुरा की कला

कुषाण-गुप्त काल

ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी के अन्तिम पाद में कुषाण वंश के आखिरी शासक वासुदेव का शासन समाप्त हुआ और इसी के साथ मथुरा की कुषाण कला का उत्कर्ष भी समाप्त हो गया। इसके बाद गुप्तों के सुदृढ़ शासन की स्थापना तक इस भूप्रदेश में राजनीतिक उथल-पुथल हो रही थी। गुप्तों के समय कला को एक नया मोड़ मिला और साथ ही साथ अब भाव सौंदर्य की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। सौंदर्य के मानदण्ड का यह परिवर्तन तत्कालीन जीवन के सभी क्षेत्रों में झलकता हुआ दिखलाई पड़ता है। मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य, वेशभूषा, वास्तुकला, इत्यादि अनेक क्षेत्रों में इस नवीन जागरण के दर्शन होते हैं, परन्तु स्पष्ट है कि यह जागरण आकाश में कौंध उठने वाली बिजली के समान एकाएक समुद्भूत नहीं हुआ था। इसके पीछे लगभग एक शताब्दी की परम्परा है। कुषाण काल के अन्तिम दिनों से ही इन नवीन विचारों की सूचना मिलने लगती है। मथुरा कला में देखे जाने वाले इस परिवर्तन युग को यहाँ संक्रमण काल अथवा कुषाण-गुप्त काल कहा गया है। साधारण रूप से सन् २०० से लगभग सन् ३२५ तक का समय इसमें समाविष्ट हो सकता है।

इस युग में निर्मित प्रतिमाओं में कुषाण और गुप्त दोनों कलाओं के लक्षणों का अद्भुत मेल दिखलाई पड़ता है। यहाँ कलाकार अपनी परंपरागत पद्धति से मूर्ति तो गढ़ता है पर साथ ही साथ उसका ध्यान भावपक्ष की ओर भी लगा रहता है। उदाहरणार्थ सुखासीन कुबेर (सं. सं. सी. ३ चित्र-७०) के मुख पर दिखलाई पड़ने वाला सुख और सन्तोष का चित्रण। बुद्ध या तीर्थंकर की मूर्ति बनाते समय कलाकार शांत और स्मित युक्त मुख बनाने की चेष्टा करता है। प्रभा-मण्डल को हस्तिनखों से युक्त तो बनाता है पर बीच वाली खाली जगह में कतिपय नवीन अभिप्रायों का सृजन करता है। चतुर्भुज शिवलिंग को गढ़ते समय चारों मुखों पर चार विशेष प्रकार के भाव प्रदर्शित करने का भी प्रयास करता है। केवल मथुरा कला की ही नहीं, अपितु अन्यत्र पाई गई कुछ मूर्तियाँ भी इस काल की कला का प्रातिनिध्य करती हैं। प्रो. काड्रिंग्टन ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि कुषाण और गुप्तकाल के बीच वाली खाई को मिलाने वाली

चार बुद्ध मूर्तियाँ[1] विशेष रूप से स्मरणीय हैं ।[2] कुषाण-गुप्त काल की मूर्तियों की साधारण रूप से अधोलिखित विशेषताएं मानी जा सकती हैं :

१. भौंहों की वक्रता में वृद्धि होती है ।[3]

२. कानों की लम्बाई बढ़ने लगती है ।

३. हास्य को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए होंठों के दोनों छोरों पर हल्के गड्ढे दिखलाई पड़ते हैं (चित्र-७१) । गुप्तकाल में इनकी गहराई और भी बढ़ जाती है। इन्हें संस्कृत में सृक्वा, सृक्क, या सृक्किणी कहा जाता है ।[4] गुप्तकालीन मिट्टी के खिलौनों में तो ये गड्ढे किसी नुकीली वस्तु को गड़ाकर बनाये जाते थे ।

४. सारे शरीर की बनावट में छरहरापन तो नहीं दिखलाई पड़ता पर पेट, कमर और जांघों की वनावट अधिक आकर्षक अवश्य हो जाती है (चित्र-६७) ।

५. साधारणतया केशों की रचना, हाथों के अंगदादि अलंकार मेखला आदि की बनावट में प्राचीन कुषाण परंपरा के दर्शन होते हैं ।

६. प्रभामण्डल में हस्तिनख की अन्तिम पंक्ति तो रहती है पर उसके और केन्द्र के बीच वाले रिक्त स्थान में शनैः-शनैः अलंकरणों का बनना प्रारम्भ होता है जो गुप्तकाल में पहुँचकर पूर्णता को पा लेता है ।

गुप्तकाल

इस काल की कला का प्रमुख वैशिष्ठ्य मूर्तिकला ही है । कलाकार के कुशल हाथों में पड़कर इस काल की मिट्टी और पत्थर सौन्दर्य की जीती जागती प्रतिमाओं में बदल जाते थे । गुप्तकालीन कलाकारों ने कुषाण काल के शारीरिक सौंदर्य के उत्तान प्रदर्शन को नहीं अपनाया वरन् स्थूल सौंदर्य और भाव सौंदर्य का सुन्दर योग स्थापित किया । गुप्तकला में विवस्त्र या नग्न चित्रण को कोई स्थान नहीं है जब कि कुषाण कला की वह एक अपनी विशेषता थी । कुषाण कला का पारदर्शक केश विन्यास शरीर के सौष्ठव को, उसके मांसल अवयवों को चमकाने के

[1] ये चार मूर्तियाँ निम्नांकित हैं :
(क) सांची की स्तूप २६ की बुद्धमूर्ति ।
(ख) अमरावती की खड़ी बुद्ध प्रतिमा ।
(ग) इलाहाबाद की खड़ी बुद्ध प्रतिमा ।
(घ) सांची के महास्तूप की आसनस्थ बुद्ध प्रतिमाएं ।

[2] के. डी. बी. कार्ड्रिगटन, Mathura of the Gods, **मार्ग,** खण्ड ९, संख्या २, मार्च १९५६, पृ. ४६ ।

[3] सं. सं. ३९-४०.२८३१ ।

[4] सं. सं. ६३-१, तुलना कीजिये, **पंचतंत्र,** भाग १ ।

लिए बनाया जाता था, परन्तु गुप्त काल का वस्त्र विलास उसे सुरुचिपूर्ण ढंग से आच्छादित करने के लिए ही बनता था। वेदिका स्तंभों पर अंकित क्रीड़ारत युवतियों का अंकन गुप्त युग में लोकप्रिय न रहा। अब इन बाहर की प्रतिमाओं की अपेक्षा गर्भगृह के अन्दर संस्थापित उपास्य मूर्ति के सौंदर्य को अधिक मूल्य दिया जाने लगा।

डा. कुमारस्वामी के शब्दों में गुप्तकाल की कला जो मथुरा की कुषाण कला से उद्भूत है, स्वतः एकरूप एवं स्वाभाविक है।[1]

गुप्तकालीन मानव मूर्तियों की कुछ विशेषताएं, जो बहुधा सर्वसाधारण रूप से देखी जा सकती हैं, निम्नांकित हैं :

१. सादी एवं प्रभावोत्पादक शैली जिसकी सहायता से अनेक भव्य आदर्श साकार हो उठे हैं। बुद्ध की कुछ मूर्तियों में (उदाहरणार्थ सं. सं. ००.ए ५, चित्र ७९) तथा मथुरा की गुप्तकालीन विष्णु मूर्ति में जो इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है, आध्यात्मिक शान्ति, प्रसन्नता, स्नेह व दयाशीलता के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

२. मूर्ति के अंकन में यथार्थ की अपेक्षा आदर्श की मात्रा बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए आंखें अब गोल नहीं होती अपितु वे धनुषाकार भौंहों के साथ कान तक (आकर्ण) फैल जाती हैं और आकार में लम्बी और कोनेदार दिखलाई पड़ती हैं।

३. पाषाण प्रतिमाओं में आंखों की पुतलियाँ कम ही बनती रहीं और आंखें अधखुली दिखलाई जाती थीं।

४. नाक सीधी, कपोल चिकने, होंठ कुछ मोटे तथा गड्ढेदार बनाये जाने लगे। कानों की बनावट में भी महत्त्वपूर्ण अन्तर हो गया।

५. कुषाण काल में हास्य का प्रदर्शन करने के लिए कभी-कभी दन्तावलि दिखलाई जाती है, पर गुप्तकाल में विशेष प्रकार की मूर्तियों को छोड़कर सामान्यतः केवल मंदस्मित से ही काम लिया गया है।

६. विष्णु, कार्तिकेय, इन्द्र आदि मूर्तियों में भौंहों के बीच दिखलाई पड़ने वाला देवत्व का प्रदर्शक ऊर्णा चिह्न अब अदृश्य हो जाता है।

७. केशों की बनावट में अनेक आकर्षक प्रकार दिखलाई पड़ने लगते हैं।

८. वस्त्र साधारणतया झीने और शरीर से चिपके हुए दिखलाई पड़ते हैं।

९. कुषाण काल की अपेक्षा अलंकारों की संख्या कम होने लगती है। कुछ चुने हुए आभूषण जैसे कंठ की एकावली, हाथों के अंगद और कंकण, मोतियों का जनेऊ, करधनी और नूपुर ही साधारणतया दिखलाई पड़ते हैं।

[1] आनन्द कुमारस्वामी, *HIIA.*, पृ. ७२।

बुद्धमूर्ति

कुषाण काल के समान गुप्तों के समय भी मथुरा नगर कला का एक तीर्थ रहा, पर कला का मुख्य केन्द्र होने का सौभाग्य अब सारनाथ (वाराणसी) को मिला,[१] जहाँ चुनार पत्थर के माध्यम से इस काल की कई अमर कृतियाँ निर्मित हुईं। मथुरा की गुप्त कलाकृतियों में सर्वश्रेष्ठ वह बुद्ध प्रतिमा है जिसने अपने सौन्दर्याभिव्यक्ति के कारण देश की सभी गुप्त कृतियों में एक महत्वपूर्ण स्थान पाया है। इस प्रतिमा के मुखमण्डल पर विलास करने वाला मंदस्मित, शान्त मुद्रा एवं आध्यात्मिक प्रभुता का तेज देखते ही बनता है (सं. सं. ००.ए ५, चित्र-७९)।

गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों में अधोलिखित विशेषताएं अवलोकनीय हैं :

१. आध्यात्मिक चिंतन, शान्ति और स्मित के मुख पर स्पष्ट दर्शन।

२. शरीर के बनावट में मृदुता।

३. वस्त्रों का झीना और पारदर्शक होना।

४. वस्त्र की विशेष प्रकार की सिकुड़न। कुषाण काल की मूर्तियों में बहुधा वस्त्र की सिकुड़नें खोदकर बनाई जाती थीं, पर गुप्तकाल में ये धारियाँ उभरी हुई रहती हैं। साथ ही ये वस्त्र हलके और पारदर्शक भी हैं (चित्र-७०)।

५. अलंकृत प्रभामण्डल। कुषाण काल में प्रभामण्डल के किनारे पर प्रायः अर्धचन्द्र या हस्तिनख की पंक्ति बनी रहती थी पर अब इस के साथ साथ विकसित कमल, पत्रावली, पुष्पलता आदि कई अभिप्राय बने रहते हैं (चित्र-७९)।

६. घुँघरदार बालों से अलंकृत मस्तक। अब बुद्ध का मुण्डित मस्तक क्वचित् ही दिखलाई पड़ता है, उस स्थान पर घुँघराले बालों की घुमावदार लटें दिखलाना साधारण प्रथा बन जाती है।[२]

७. कुषाण काल में भौंहों के बीच दिखलाई पड़ने वाला ऊर्णा चिह्न अब इनी-गिनी मूर्तियों में दिखलाई पड़ता है (सं. सं. १८.१३९१, ३३.२३३७, २३०९.३३ इ.)। इन मूर्तियों को केवल परिपाटी के पालन का नमूना कहा जा सकता है। साधारणतया ऊर्णा चिह्न अब कुषाण काल के समान आवश्यक नहीं समझा जाता था।

८. अभयमुद्रा दिखलाने वाले हाथ की स्थिति में भी अब परिवर्तन होता है। कुषाण मूर्तियों में यह हाथ लगभग कन्धे तक ऊंचा उठा रहता है, पर गुप्त-बुद्ध प्रतिमा में वह लगभग समकोण बनाते हुए अधिकाधिक कमर तक ही उठता है।[३]

[१] स्टेला क्रेमरिच, *Indian Sculpture*, पृ. ६३

[२] मुण्डित मस्तक युक्त बुद्ध प्रतिमा का केवल एक ही नमूना अब तक ज्ञात है जो लखनऊ के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है और मानकुवर बुद्ध प्रतिमा के नाम से पहिचाना जाता है (लखनऊ संग्रहालय संख्या ओ. ७०)।

[३] मिलाइये—सं. सं. ००.ए. १, ३९.२८३१, ००.ए. ५ आदि।

९. दोनों पैरों के बीच में दिखलाई पड़ने वाली वस्तुओं का लुप्त होना।[1]

१०. कानों की लम्बाई व सारे चेहरे की बनावट तथा हाथों की बनावट में भी अन्तर है। गुप्तकालीन चेहरे की विशेषताएं पहले बतलाई जा चुकी हैं। हाथ की मुख्य विशेषता उसकी उंगलियों में है। कुषाणकाल में जहाँ पांचों उंगलियाँ मिली हुई दिखलाई पड़ती हैं, वहाँ गुप्तकाल में वे सम्मुख भाग में एक दूसरे से पृथक् मालूम पड़ती हैं।

११. हथेलियों पर बनने वाले चिह्न गुप्तकाल में कम हो जाते हैं। यहाँ सामुद्रिक रेखायें तो रहती हैं, पर धर्मचक्र और त्रिरत्न नहीं रहते (चित्र-७८)।

जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ

इस काल की बनी हुई तीर्थंकर मूर्तियाँ भी अधिकतर भाव प्रधान हैं। बुद्ध प्रतिमाओं के समान उनके प्रभामण्डल विविध प्रकार से अलंकृत मिलते हैं। हथेलियों और पैरों के तलुओं पर धर्मचक्र चिह्न बना रहता है (सं. सं. ००.बी. १, ००.बी. ११, ००.बी. २८)। यह भी विशेष महत्व की बात है कि जहाँ गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों में ऊर्णा चिह्न बहुधा नहीं मिलता वहाँ जैनियों ने इस पद्धति को पूरी तरह से नहीं छोड़ा। ऊर्णा और उष्णीश से युक्त जैन मूर्तियों के नमूने मथुरा शैली में विद्यमान हैं (सं. सं. ००.बी. ४५, ००.बी. ५१), पर ऐसे नमूने कम हैं।

तीर्थंकरों के लांछन दिखलाने की पद्धति अभी नहीं चली थी। कुषाणकाल के समान इनके नामों को जानने के लिए हमें उन पर अंकित शिलालेखों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ऋषभनाथ और पार्श्व तो क्रमशः कन्धों पर लहराते हुए बालों की लटों व मस्तक पर दिखलाई पड़ने वाली सर्प-फणों से पहिचाने जा सकते हैं।

तीर्थंकरों की कुछ ऐसी मूर्तियाँ हैं जो गुप्तकाल और मध्यकाल की संक्रमणावस्था को सूचित करती हैं। उदाहरणार्थ एक तीर्थंकर प्रतिमा (सं. सं. १८.१३८८) की चरण चौकी पर अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का लांछन मीन-मिथुन बना है। एक दूसरी तीर्थंकर प्रतिमा (सं. सं. ००.बी. ७५) पर जैन, बौद्ध और ब्राह्मण धर्म के अभिप्रायों का अद्भुत संमिश्रण है। मूर्ति तीर्थंकर की है, उनके आसन पर दो मृगों के बीच धर्म-चक्र वाला एक बौद्ध अभिप्राय है और पीछे की ओर कुबेर और नवग्रहों की मूर्तियाँ बनी हैं।

ब्राह्मण धर्म की मूर्तियाँ

इस काल का राजधर्म भागवत धर्म होने के कारण यह स्वाभाविक था कि वेदशास्त्रों से अनुमोदित ब्राह्मण धर्म की ओर प्रजा का झुकाव अधिक रहा हो और इससे सम्बन्धित मूर्तियों का प्रचलन भी अधिक रहा हो। इस सम्बन्ध में निम्नांकित बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं :

१. मथुरा शैली में अन्य देवताओं की अपेक्षा ब्रह्मा की मूर्तियाँ कम बनती थीं।

[1] देखिये—इस पुस्तक का पृष्ठ २१, ९।

२. विष्णु की मूर्तियों की विपुलता है। प्रारम्भिक विष्णु मूर्तियों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में विष्णु प्रतिमा को गढ़ने के लिए पुरानी कुषाण कालीन विष्णु मूर्ति को ही आधार माना गया था, पर साथ ही साथ नवीन तत्त्वों का भी समावेश तेजी से होने लगा था (चित्र-७२)। उनका सीधा साधा मुकुट अब शनैः-शनैः लुप्त होने लगा और उसका स्थान सिंह-मुख, मकर, मुक्ता-जाल आदि अलंकरणों से युक्त मुकुट ने ले लिया (चित्र-८४)। गले के आभरण तथा पहनने के वस्त्र में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। वनमाला तथा प्रभामण्डल का निर्माण अब प्रारम्भ हुआ। गुप्तकाल से ही प्रारम्भ होने वाली एक दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता विष्णु के आयुधपुरुषों की निर्मिति है। मथुरा कला में गदा-देवी व चक्र-पुरुष के दर्शन होते हैं। चारों आयुधों को धारण किये हुए खड़े विष्णु के साथ ही इस काल में आसन पर बैठी हुई प्रतिमाएं भी बनी थीं (सं. सं. १५.५१२)। साधारण प्रतिमाओं के अतिरिक्त त्रिविक्रम रूप में बनी विष्णु मूर्तियाँ मथुरा से प्राप्त हुई हैं। गुप्तकाल की वैष्णव मूर्तियों में नृसिंह-वराह-विष्णु की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार की प्रतिमा में तीन मुख होते हैं। इनमें बीच का पुरुष तथा अगल-बगल के मुख वराह और सिंह के होते हैं (चित्र-८८)।

३. इस काल में शिव मूर्तियाँ भी कम नहीं मिलतीं। मथुरा में तो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में शैवों का एक बड़ा केन्द्र रहा जिसका प्रमाण यहाँ से मिला हुआ एक स्तम्भ लेख है। इस काल में शिव की लिंग-रूप और मानव-रूप दोनों प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं। इनकी प्रथम महत्त्वपूर्ण विशेषता शिव का तीसरा नेत्र है। कुषाणकाल में यह नेत्र आड़ा बनाया जाता था पर कुषाण-गुप्तकाल से ही यह खड़ा बनाया जाने लगा (चित्र-७३)। शिवलिंगों में साधारण लिंगों के अतिरिक्त एक-मुखी (सं. सं. १४-१५.४२७, १६.१२३८) व द्विमुखी लिंग (सं. सं. १४-१५.४६२) मिलते हैं। अन्यत्र शिव के चतुर्मुख और पंचमुख लिंग भी मिलते हैं। शिव की मूर्तियों में अर्धनारीश्वर (चित्र-८०) व आलिंगन मुद्रा में शिवपार्वती (सं. सं. १४.४७४) की प्रतिमाएं अधिक मिलती हैं। मथुरा की शिव प्रतिमाओं की यह एक विशेषता है कि यहाँ जब शिव अपनी शक्ति के साथ होते हैं तब उन्हें अवश्य ही उर्ध्वमेढ़ स्थिति में दिखलाया जाता है जो आदि-पुरुष की अमोघ शक्ति का परिचायक है। शिव-पार्वती की मूर्तियों में अलंकरण व भाव प्रदर्शन की दृष्टि से वह मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो एक ही ओर नहीं अपितु दोनों ओर समान रूप से बनाई गई हैं (सं. सं. ३०-२०८४)। गुप्तकाल की कुछ मूर्तियों में शिव के परिचायक चिह्नों में व्याघ्राम्बर (सं. सं. ५४.३७६४; चित्र ७४) अर्धचन्द्र या बालेन्दु (सं. सं. १३.३६२) दिखाई देते हैं।

४. भारतीय कलाकृतियों में प्राचीनकाल की गणेश मूर्तियाँ बहुत ही कम मिली हैं जिनमें से एक मथुरा से प्राप्त हुई है (सं. सं. १५.७५८)।

५. उपरोक्त मूर्तियों के अतिरिक्त इन्द्र (सं. सं. ४६.३२२६, चित्र ७७), हरिहर (सं. सं

१०.१३३३), कुबेर (सं. सं. ००.सी. ५),यमुना (लखनऊ संग्रहालय जे. ५६३) आदि की सुन्दर मूर्तियाँ भी मिलती हैं ।

६. फुटकर मूर्तियों में सूर्य देवता के एक अनुचर पिंगल की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इस पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है (सं. सं. १५.५१३)। इसी प्रकार की एक अन्य मूर्ति सूर्य के दूसरे अनुचर दण्ड की भी दर्शनीय है (सं. सं. १८.१३९७)। गुप्तकाल में अन्यान्य देवताओं के साथ नागपूजा प्रचलित थी । आरंभिक गुप्तकाल की एक सुन्दर नागी की प्रतिमा संग्रहालय में विद्यमान है (सं. सं. ३६.२६६५) ।

गुप्तोत्तरकालीन मूर्तियाँ

गुप्तोत्तरकाल में सभी सम्प्रदायों की मूर्तियाँ तो खूब बनती रहीं पर कला और सौन्दर्य की दृष्टि से उनमें गुप्तकाल की सर्वांग सुन्दरता नहीं दिखलाई पड़ती है । बहुत सी मूर्तियों में मौलिकता का अभाव है। तथापि इन मूर्तियों का एक अपना सौन्दर्य है। मथुरा कला की मध्यकालीन प्रतिमाओं की मुख्य रूप से अधोलिखित विशेषताएं गिनाई जा सकती हैं :

(१) मथुरा की कलाकृतियों के लिए अब तक जहां चित्टेदार लाल पत्थर का प्रयोग होता था वहां अब मध्यकाल में पहुँचते-पहुँचते भूरे रंग के बलुए पत्थर का प्रयोग होने लगा और कलाकारों ने लाल पत्थर की मूर्तियां गढ़ने के लिए आश्रय देना समाप्त-सा कर दिया।

(२) इस काल की प्रतिमाओं में मांसलता और छोटा कद अधिक दिखलाई पड़ता है। साथ ही साथ कवि-संकेत-सिद्ध सौंदर्य के मानदण्डों को जैसे विशाल आकर्ण-नेत्र, शुक-चंचु के समान नासिका, निकली हुई कोनेदार ठोड़ी, स्त्रियों के अविरल स्तन-युग्म, इत्यादि को प्रमुख रूप से अपनाया गया।

(३) इसके साथ साथ अलंकारों के अंकन की मात्रा भी बढ़ गई । भारी कंठ-भूषण, अलंकारों से भरे हुए हाथ, भारी वजन की मेखलायें या रशना-जाल, ऊंचे उठे हुए मुकुट, पुष्पों से शोभित धमिल्ल एवं नयनरम्य केशभार इस काल की मूर्तियों में बड़ी ही रुचि से बनाये जाते थे।

(४) मथुरा की मध्यकालीन मूर्तियाँ अधिकतर समूचे पत्थर की पटिया पर उकेर कर बनाई गई हैं, चारों ओर से देखी जाने वाली मूर्तियां कम हैं।

(५) इस समय की पुरुष मूर्तियों में मस्तक के केशों का अंकन भी ध्यान देने योग्य है। कुषाण काल में मुकुट के नीचे कानों के ऊपर थोड़े केश दिखलाये जाते थे। गुप्त काल में मुख पर इस प्रकार के बाल दिखलाना बंद हो गया, उन्हें कन्धों पर विपुलता से लहराते हुए दिखलाने लगे थे। गुप्तोत्तर काल में भाल के ठीक ऊपर काढ़े हुए बालों की एक छोटी-सी पंक्ति दिखलाई पड़ने लगती है।

(६) इस काल की मूर्तियों की दृष्टि में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। अब इनकी दृष्टि अन्तर्मुखी नहीं है, अपितु दर्शक या भक्त की ओर पूरी तरह अवलोकन करने वाली है।

उस काल तक पहुँचते-पहुँचते बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्म के मूर्तिशास्त्र बहुत अधिक विकसित हो चुके थे और विभिन्न देवी देवताओं के अनेक ध्यान लोकप्रिय हो रहे थे। इस बदलती हुई परिस्थिति के फलस्वरूप हमें यहां अनेक नवीन प्रकार की मूर्तियां मिलती हैं। इनमें कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रतिमाओं की यहां चर्चा की जा रही है।

(क) जैन संप्रदाय की प्रतिमाएं

इस काल की बनी जैन मूर्तियों में भावपक्ष तो निर्बल है पर मूर्तिशास्त्र की दृष्टि से वे अधिक पूर्ण हैं। अब केवल तीर्थंकरों के लांछन ही नहीं अपितु कहीं-कहीं उनके साथ के यक्ष आदि भी बनें रहते हैं। इससे तीर्थंकर की पहिचान करना सहज हो जाता है। इन प्रतिमाओं की दूसरी विशेष बात यह है कि अब बुद्ध और जैन प्रतिमा के मस्तकों में विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। प्रभामण्डल, उष्णीश, छत्रावलि, विद्याधर आदि वस्तुएं दोनों में पायी जाती हैं।

समय के साथ-साथ जैनों का देवता-संघ भी बढ़ता गया और उनकी मूर्तियां निर्माण होती गईं। मथुरा के संग्रहालय में जैनों के एक देवता क्षेत्रपाल की एक प्रतिमा विद्यमान है (चित्र-९७)। यह भैरव का ही एक स्वरूप है। इसी प्रकार जैनों की एक प्रसिद्ध देवी चक्रेश्वरी की मूर्ति यहां देखी जा सकती है (चित्र-९३) जिसके सभी हाथों में चक्र बने हैं। अन्य देवताओं में सिंहारूढ़ अम्बिका (चित्र-९८) एवं कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हुए स्त्री-पुरुष या 'युगलिया'[1] प्रतिमा (सं. सं. १५.११११) दर्शनीय हैं।

(ख) बौद्ध मूर्तियां

इस काल की मथुरा में बनी बुद्ध मूर्तियों की संख्या अधिक नहीं है। कुछ के टूटे हुए सिर संग्रहालय में हैं जिन पर क्वचित उष्णीश और उर्णा विद्यमान है। बोधिसत्त्वों की स्वतन्त्र मूर्तियां बनना इस काल में मथुरा में बंद-सा हो गया था। इतिहास भी हमें बतलाता है कि आठवीं शताब्दी के बाद अर्थात् शंकराचार्य के समय में बौद्ध धर्म भारत से लगभग उठ गया था। इसलिये इन मूर्तियों का न मिलना स्वाभाविक ही है।

(ग) वैष्णव मूर्तियां

मथुरा संग्रहालय की मध्यकालीन वैष्णव प्रतिमाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण मूर्ति आसनस्थ चतुर्भुज-विष्णु की है (चित्र-९४)। इस काल में खड़े या शेष पर लेटे हुये विष्णु की प्रतिमाएं साधारण रूप से बनती थीं, पर बैठे हुये विष्णु जिन्हें बुद्ध अवतार का प्रतीक

[1] इस पहिचान के लिए लेखक डा. जोतीप्रसाद जैन, लखनऊ, का ऋणी है।

समझते हैं, कम दिखलाई पड़ते हैं। प्रस्तुत मूर्ति अपनी पूर्णता के कारण विशेष रूप से दर्शनीय है। अन्य प्रकार की विष्णु मूर्तियों में गुप्त काल की अपेक्षा अलंकरणों की विपुलता है। साथ ही साथ ब्रह्मा, शिव, आयुधपुरुष, श्री देवी व भूदेवी, नवग्रह, दश अवतार आदि अनेक छोटी मूर्तियां आस पास बनी दिखलाई पड़ती हैं। इस काल की एक अन्य विशेषता विष्णु के वक्षस्थल पर दिखलाई पड़ने वाला चतुर्दल कौस्तुभ है जो मथुरा की कुषाण और गुप्तकालीन कला में अदृश्य था।

अन्य प्रकार की वैष्णव मूर्तियों में शेषशायी विष्णु (सं. सं. १२.२५६), वामन अवतार (सं. सं. १५.१०२५), वराह अवतार (सं. सं. १८.१११४) व बलराम (सं. सं. १८.१५१५) की मूर्तियां मुख्य हैं।

(घ) शैव व अन्य मूर्तियां

इनमें आलिंगन मुद्रा में उमामहेश्वर (००. डी १४), आसनस्थ शिव (००. डी ४३. ४४), हरगौरी (१०.१३९) आदि मूर्तियां व कतिपय शिवलिंगों को गिनाया जा सकता है।

अन्य देवी देवताओं की मूर्तियों में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य निम्नांकित प्रतिमाएं हैं:

नृत्य गणेश (सं. सं. १२·१८९), आलिंगन मुद्रा में सपत्नीक गणेश (सं. सं. १५.१११२), देव सेनापति कार्तिकेय को ब्रह्मा व शिव द्वारा अभिषेक (सं. सं. १४·४६६), अग्नि जिसमें उसके वाहन मेष को पुरुष रूप में दिखलाया गया है (सं. सं. ००.डी.२४), हनुमान (सं. सं. ००.डी २७), कुबेर और गणेश के साथ लक्ष्मी (सं. सं. १५·१११९), शिव लिंग और गणेश से युक्त तपस्या में लीन पार्वती (सं. सं. १५·१०४४), तीन पैरों वाले भृंगी ऋषि (सं. सं. १७·१२८९), महिषासुरमर्दिनी (सं. सं. १५.५४१), वीरभद्र और गणेश के बीच सप्तमातृकाएं, (सं. सं. १५·५५२), उषा व प्रत्यूषा के साथ रथ पर बैठे सूर्य (सं. सं. ००·डी. ४५), दण्ड-पिंगल के साथ खड़े सूर्य (सं. सं. १६.१२२०) आदि।

माथुरी कलाकृतियों में अंकित कथा-दृश्य[1]

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि मथुरा की कला किसी धर्म विशेष से बंधी हुई नहीं है। इसके आचार्यों ने ब्राह्मण, बौद्ध व जैन धर्मों की समान रूप से सेवा की है। फलतः इसमें अनेक विषयों का अंकन हुआ है। इनमें से बहुतों की चर्चा तो हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं तथापि विभिन्न स्थानों पर दिखलाई पड़ने वाले कथा-दृश्यों का विशद विवरण देना विशेष उपयोगी होगा क्योंकि इससे उन कथा-दृश्यों को समझने और उनका मूल्यांकन करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

साधारणतया इन विभिन्न कथा-दृश्यों को निम्नांकित रूप से बाँटा जा सकता है :

(क) बौद्ध कथाएं।

(ख) ब्राह्मण धर्म के कथा-दृश्य।

(ग) फुटकर कथाएं।

इनमें बौद्ध कथाओं की संख्या सर्वाधिक है। यह अवश्य ही आश्चर्य का विषय है कि जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र होते हुए भी माथुरी कला में जैन कथाओं का अंकन बहुत ही थोड़ा है। ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित कथाओं की भी बहुलता नहीं है। अतएव प्रथम बौद्ध कथाओं को लें।

बौद्ध कथा-दृश्य

इन्हें यहाँ दो रूपों में समझा जा सकता है—एक तो बुद्ध के अतीत जन्मों की कथाएं और दूसरे बुद्ध जीवन के दृश्य। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बुद्धत्त्व की प्राप्ति के पूर्व बुद्ध ने कई जन्म लिये थे। इन जन्मों की कथाएं जातक कथाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन कथाओं को वेदिकास्तम्भों पर, सूचिकाओं पर अथवा दीवालों पर अंकित करना प्राचीनकाल की सामान्य

[1] इस अध्याय में मुख्यतः उन्हीं कथा-दृश्यों की विस्तार से चर्चा की गई है जो पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा में विद्यमान हैं। उन कथा-दृश्यों का जो अन्य संग्रहालयों में विद्यमान हैं, केवल संकेतभर किया गया है, साथ ही उनका संदर्भ भी दे दिया गया है।

परिपाटी थी जिसके नमूने भरहूत, सांची, अमरावती आदि स्थानों पर तथा गान्धार कला में भी प्रचुरता से मिलते हैं। मथुरा की कला भी इस नियम के लिए अपवाद नहीं है। यहाँ की कलाकृतियों में अब तक बारह जातकों की पहचान हो चुकी हैं। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(१) दुःखोपादान जातक (सं. सं. १५.५८६ चित्र १३)[1]

इसका अंकन एक वेदिका स्तम्भ पर किया गया है (चित्र-१३) जिसमें एक फुल्ले में पर्णशाला के सामने एक बैठा हुआ साधु दिखलाई पड़ता है। ठीक उसी के पास उसकी ओर मुँह किए एक सांप, हिरन, कौवा तथा कबूतर भी बने हैं। कथा इस प्रकार है कि एकबार चार भिक्षुओं में दुःख के मूल कारण के विषय में बात चली। चारों के मत भिन्न थे अतएव वे शंका निवृत्ति के लिए बुद्ध के पास गये। बुद्ध ने पूर्व जन्म की एक घटना को बतलाते हुये उनका समाधान किया। उन्होंने बतलाया कि एक वन में रहने वाले हिरन, कौवा, सांप तथा कबूतर में पहले एक बार ऐसा ही वाद उठ पड़ा था। कबूतर का मत था कि प्रेम दुःख का मूल उपादान है, कौवे के मतानुसार यह उपादान भूख थी, सांप घृणा को मूल उपादान बतलाता था और हिरन सोच रहा था कि भय के अतिरिक्त दूसरा कोई उपादान नहीं हो सकता। निकट ही रहने वाले एक साधु से यह प्रश्न पूछा गया। उसने बतलाया कि तुम सभी अंशतः सच बतला रहे हो पर दुःख के मूलतम उपादान तक नहीं पहुँच रहे हो। देह धारण ही सभी दुःखों का मूल कारण है।

समारोप करते हुए बुद्ध ने बतलाया कि उस जन्म में साधु वे स्वयं थे और विवाद करने वाले चार भिक्षु चार जानवर थे। यह जातक कथा आज के उपलब्ध पाली साहित्य में नहीं मिलती, अपितु बुद्ध जीवन से सम्बन्धित एक चीनी ग्रंथ में इसका विवरण मिलता है।

(२) सिसुमार अथवा वानरिन्द जातक (सं. स. ००.जे ४२; १२.१९५)[2]

यह कथा दो वेदिका स्तम्भों पर अंकित मिलती है। इसमें एक मगर और बन्दर को एक साथ दिखलाया गया है। कथा यह है कि एक समय बोधिसत्त्व बन्दर के रूप में एक नदी के तट पर निवास करते थे। उसी नदी में मगर का एक जोड़ा भी रहता था। एक बार मगर की पत्नी ने बन्दर का कलेजा खाने की इच्छा अपने पति के पास प्रगट की। प्रियतमा की इच्छा पूरी

[1] वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS*, खण्ड २४-२५, पृ. ३८-३९।

[2] यह जातक कथा मथुरा से प्राप्त एक अन्य वेदिका स्तम्भ पर भी अंकित है, जो इस समय लखनऊ संग्रहालय में विद्यमान है। देखिये—लोभ्रेन, डी ले फ्यू जे. वी., Two Notes on Mathura Sculptures, *India Antiqua* फोगल-स्मृति ग्रंथ, लीडन, १९४७, पृ. २३५-३९।

करने के लिए मगर ने बन्दर से दोस्ती की और एक दिन उसे सुझाया कि बन्दर को चाहिए कि वह नदी के दूसरे तट पर लगे हुये ताजे और मधुर फलों को खाया करे और इसके लिए वह स्वयं उसे पार ले जाया करेगा। बन्दर मगर की बातों में आ गया और उसकी पीठ पर बैठकर नदी में चल पड़ा। बीच धारा में पहुँचकर मगर ने उसे सही बात बतलाई और स्वयं पानी में डूबने लगा। चतुर बन्दर हँस पड़ा, उसने कहा आश्चर्य है कि तुम्हें यह पता ही नहीं है कि बन्दर लोग कभी अपना कलेजा अपने साथ नहीं रखते, अन्यथा कूदने फांदने में उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। वे तो उसे पेड़ों पर लटका के रखते हैं। मूर्ख मगर ने इस बात पर विश्वास कर लिया और बन्दर का कलेजा पाने के लालच से उसे पुनः किनारे पर ले आया। अब बन्दर कूद पड़ा और मगर की बुद्धिहीनता पर हँसने लगा।

जातकों के अतिरिक्त थोड़े परिवर्तनों के साथ यह कथा पंचतंत्र में भी मिलती है।

(३) महासुतसोम जातक (सं.सं. १४.४३१, ०० जे.२३[१], चित्र १५)

इसका सबसे अच्छा उदाहरण एक प्रस्तर खण्ड पर मिलता है। यहाँ एक पुरुष कन्धे पर बहेंगी लिये जा रहा है जिसके दोनों छोरों से एक-एक मानव आकृति लटक रही है।

इस जातक की कथा के अनुसार एक समय वाराणसी के किसी राजा को मानव का माँस खाने की रुचि उत्पन्न हो गई। अपनी दुष्ट इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसने कितने ही निरीह मनुष्यों को मरवा डाला। जब इसका भेद खुला तब लोगों ने उसे राज्य से निकाल दिया। वह भी एक जंगल में रहकर वहाँ आने वाले पथिकों को मारकर खाने लगा। एक बार उसके पैर में चोट आई। अतएव उसने वृक्षदेवता की मनौती की कि उसका व्रण एक सप्ताह में ठीक होने पर वह एक सौ एक कुमारों की बलि चढ़ावेगा। संयोग से उसका पैर ठीक हो गया। अब अपनी मनौती की पूर्ति के लिए उसने एक सौ कुमारों को पकड़कर एक वृक्ष से लटका दिया। अन्तिम कुमार बोधिसत्त्व सुतसोम थे जिन्हें इस नरभक्षक ने पकड़ लिया, पर बोधिसत्त्व के अदम्य साहस, निर्भीकता आदि गुणों से वह बड़ा प्रभावित हुआ और अन्ततोगत्वा उसकी सम्पूर्ण जीवन-धारा को पलट देने में बोधिसत्त्व सुतसोम पूरी तरह सफल हो गये।

(४) रोमक अथवा पारावत जातक (सं. सं. ००.आई ४, चित्र २४)[२]

यह जातक अपने मूल स्थान पर कई भागों में अंकित था। इस समय अवशिष्ट शिला-खण्ड पर केवल दो भाग देखे जा सकते हैं। कथा-दृश्य के ऊपर मालाधारी यक्षों की पंक्ति बनी

[१] वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS.*, खण्ड २४-२५, पृ. १५।
[२] वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, खंड २३, पृ. १२८।

हुई थी। यहाँ हम कुछ साधू व एक कबूतर देखते हैं। इन साधुओं में एक दूसरे की अपेक्षा अवस्था में वृद्ध है। यह अनुमान उसकी दाढ़ी से किया जा सकता है। इस जातक की कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है :

एक समय बोधिसत्त्व ने कबूतरों के राजा का जन्म लिया था। कबूतरों का यह झुण्ड जंगल में रहने वाले एक साधु के यहाँ नियमित रूप से जाता रहा। यह साधु एक गुफा के पास रहा करता था। वृद्धावस्था के कारण आगे चलकर वह साधु उस स्थान को छोड़कर कहीं चला गया और उस स्थान पर एक दूसरा तरुण साधु आकर रहने लगा। कबूतरों का झुण्ड अब भी आता रहा। एक दिन इस नवीन साधु को कबूतरों का माँस खाने को मिला जो उसे बहुत ही अच्छा लगा। इस विषय में उसका लोभ बढ़ा और उसने इन कबूतरों के झुण्ड में शिकार करने की सोची। दूसरे दिन वह अपने कपड़ों में डण्डा छिपाकर कबूतरों की राह देखने लगा। उसकी चेष्टाओं से बोधिसत्त्व को उसके कपट व्यवहार का पता लग गया और उन्होंने अपने अनुयायियों को वहाँ जाने से रोक दिया। अब इस तरुण साधु का कपट खुल गया और अन्ततोगत्वा पास-पड़ौस वालों के डर से उसने वह स्थान छोड़ दिया।

(५) वेस्सन्तर जातक (सं. सं. ००.जे ४ पृष्ठ भाग)[१]

इस जातक कथा का अंकन कलाकारों का प्रिय विषय रहा। भरहूत और सांची की कलाकृतियों में भी यह प्रचुर रूप से अंकित है। मथुरा में यह कई भागों में दिखलाया गया था। संग्रहालय में प्रदर्शित वेदिका-स्तम्भ के पिछले भाग पर इसके कुछ दृश्य मुख्यतः कुमार वेस्सन्तर और याचक ब्राह्मण, कुमार द्वारा ब्राह्मण को अपने दोनों पुत्रों का दान तथा एकाकिनी स्त्री-मूर्ति कदाचित वेस्सन्तर की पत्नी अंकित हैं।

उस समय बोधिसत्व ने आदर्श दानी के रूप में कुमार वेस्सन्तर के नाम से जन्म लिया था। उन्होंने अपना श्वेत वर्ण का मंगल-गज, ब्राह्मणों को दान में दे दिया। फलस्वरूप उन्हें पत्नी और पुत्रों के साथ देशत्याग करना पड़ा। रास्ते में उन्होंने ब्राह्मण के मांगने पर अपना रथ और घोड़े भी दे दिये। अब यह कुटुम्ब एक पर्वत पर रहने लगा, पर यहाँ भी पूजक नाम का एक ब्राह्मण आ पहुँचा जिसने कुमार से उसके दोनों पुत्रों की याचना की। पत्नी की अनुपस्थिति में भी कुमार ने ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार की। वस्तुतः यह ब्राह्मण कुमार वेस्सन्तर की परीक्षा लेने आया था। बाद में शक्र देवता के प्रभाव से कुमार का सारा कुटुम्ब और उसका पुराना ऐश्वर्य सब कुछ उसे मिल गये।

१ वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS.*, खण्ड २४-२५, पृ. ५।

(६) **पाद-कुसल-माणव जातक (सं. सं. १२.१९१,[1] चित्र १६)**

एक वेदिका स्तम्भ के मध्य में यह अंकित है। यहाँ हम एक अश्व-मुखी यक्षी को एक तरुण पुरुष के कन्धे को छूते हुये देखते हैं।

जातक कथा हमें बतलाती है कि किसी समय वाराणसी की एक रानी ने झूठी शपथ ली, जिस पाप के कारण वह घुड़मुँही यक्षी बनी। उसने तब तीन वर्षों तक वैश्रवण कुबेर की सेवा की और यह वर प्राप्त किया कि एक निश्चित परिसर के भीतर प्रवेश करने वालों को वह खा सकेगी। एक दिन एक सुन्दर और धनवान ब्राह्मण युवक उसके चंगुल में फंस गया। परन्तु यह यक्षी उसके सौंदर्य पर लुब्ध हो गई और उसने उसे अपना पति बना लिया। परन्तु वह कहीं भाग न जाय इस भय से वह उसे सदा एक गुफा में कैद किये रहती थी। उससे इस यक्षी के एक बेटा उत्पन्न हुआ जो बोधिसत्त्व था। बोधिसत्त्व ने पैरों की चाप को सुनकर मनुष्य को पहचानने की कला में कुशलता प्राप्त की और इस विद्या की सहायता से अपने पिता को घुड़मुँही यक्षी की कैद से छुड़ा लिया।

(७) **कच्छप जातक (सं. सं. ००.जे ३६,[2] चित्र २३)**

ऊपर वाले जातक के समान यह भी एक वेदिका स्तंभ के पिछले भाग पर अंकित है। यहाँ एक कछुए को दो पुरुष लकड़ियों से पीटते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

बात यह थी कि एक बकवादी कछुए और दो हंसों में मित्रता हो गई। हंसों ने कछुओं को अपने देश में चलने के लिए निमंत्रित किया। कछुए को बात जंच गई। हंसों ने एक छड़ी ली और कछुए को उसे बीचोबीच अपने मुँह में पकड़ने के लिए कहा। उसके ऐसा करने पर दोनों पक्षी अपनी चोंच में उस छड़ी को पकड़कर उड़ चले। गांव के बच्चों ने जब यह विचित्र दृश्य देखा तब उन्होंने कछुए की हंसी उड़ाना प्रारम्भ किया। बकवादी कछुआ उसे न सह सका। जैसे ही उत्तर देने के लिए उसने मुँह खोला, वह भूमि पर आ गिरा और मर गया।

डा. फोगल ने इस कथा की चर्चा करते हुए ठीक ही कहा है कि मथुरा कलाकृति में इस कथा का अंकन जातक-ग्रन्थों के आधार पर नहीं, अपितु पंचतंत्र के आधार पर हुआ है, जिसमें कहा गया है कि कछुए की मृत्यु ऊपर से गिरकर नहीं, परन्तु ग्रामवासियों की मार के कारण हुई थी।

[1] वही, पृ. ३४ पूरी कहानी के लिए देखिये आनन्द कौसल्यायन, **जातक** (हिन्दी), खण्ड ४, पृ. १६३।

[2] इ. बी. कावेल, *The Jatakas* संख्या २१५; जे. फोगल, The Mathura School of Sculpture, *ASIR.*, १९०६-७, पृ. १५७।

(८) उलूक जातक (सं. सं. ००.जे ४१,[1] चित्र २२)

इसका अंकन भी एक वेदिका स्तंभ के पृष्ठभाग पर किया गया है। यहां हम एक उल्लू को आसन पर बैठे हुए देखते हैं। दो बन्दर अगल-बगल खड़े होकर उसका अभिषेक कर रहे हैं। कथा के अनुसार पक्षियों ने एक समय उल्लू को अपना राजा चुना। उसका अभिषेक होने ही जा रहा था कि कौवे ने इस बात का विरोध किया और वह स्वयं आकाश में उड़ गया। उल्लू भी उसका पीछा करने के लिए आकाश में उड़ चला। इधर पक्षियों ने एक सुनहले हंस को अपना राजा चुना।

(९) दीपंकर जातक (स. सं. ००.एच १०, लखनऊ संग्रहालय संख्या बी २२)[2]

इस जातक का सम्पूर्ण अंकन अब तक माथुरीकला में नहीं मिला है, परन्तु महत्त्वपूर्ण बातों का अंकन अवश्य है जैसे दीपंकर को फूल चढ़ाना तथा उनके सम्मुख सुमति का भूमि पर अपने केश फैलाना। जातक की पाली तथा संस्कृत कथाओं में कुछ अन्तर है। कथा का साधारण रूप निम्नांकित है :

सुमति नामक एक वेदज्ञ ब्राह्मण को एक राजा से दान में कई वस्तुएं मिलीं। इनमें एक कन्या भी थी। सुमति ने कन्या को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह आजन्म ब्रह्मचारी रहना चाहता था। कन्या सुमति पर मुग्ध हो चुकी थी, परन्तु उसके द्वारा अस्वीकार किये जाने पर वह दीपावती नामक नगरी में जाकर ईश्वर सेवा में समय बिताने लगी। इधर सुमति को कुछ विचित्र स्वप्न हुए जिनका अर्थ समझने के लिए उसे दीपावती नगरी में जाकर वहां पधारने वाले दीपंकर बुद्ध से मिलने का आदेश हुआ। सुमति को चाहने वाली वह कन्या भी दीपंकर का पूजन करना चाहती थी। इधर दीपावती के राजा ने अपने यहां आने वाले दीपंकर की पूजा के लिए नगर के सम्पूर्ण पुष्पों पर अधिकार कर लिया। फलतः कन्या को पूजन के लिए फूल न मिल सके। अतएव उसने अपनी तपस्या के प्रभाव से सात कमलों को विकसित कराया। यही कठिनाई सुमति के सामने भी थी। एकाएक उसने इस कन्या को फूल ले जाते हुए देखा। उसने फूलों की याचना की। पहले तो कन्या ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी, पर बाद में एक शर्त पर उसे पांच पुष्प देना स्वीकार किया। शर्त यह थी कि दीपंकर को पुष्प समर्पण करते समय सुमति अपने मन में उस कन्या को अगले जन्म में पत्नी रूप में पाने की कामना रखे। सुमति ने इसे स्वीकार किया और दोनों दीपंकर का दर्शन करने के लिए चले। सुमति ने दीपंकर को जो पांच फूल चढ़ाये वे भूमि पर तो नहीं गिरे अपितु बुद्ध के मस्तक

[1] वही, संख्या २७०, वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS.*, खण्ड २४-२५, पृ. १९।

[2] **दिव्यावदान**, १८ धर्मरुच्यावदान, पृ. १५२-५५, जे. फोगल, The Mathura School of Sculpture, *ASIR.*, १९०९-१०, पृ. ७२।

के ऊपर एक माला के रूप में स्थिर हो गये। उसी प्रकार कन्या के द्वारा समर्पित पुष्प भी दीपंकर के कानों पर स्थित हो गये। वर्षा के कारण इस समय रास्ते में कीचड़ हो रहा था। दीपंकर को चलने में कठिनाई हो रही है यह देखकर सुमति ने अपना मस्तक पृथ्वी पर झुका दिया और अपने केश बिछाकर बुद्ध को चलने के लिए मार्ग बना दिया। बुद्ध ने उसके केशों पर पैर रखे और भविष्यवाणी की कि अगले जन्म में सुमति शाक्य मुनि के रूप में उत्पन्न होंगे।

(१०) शिबि जातक[१]

मथुरा से प्राप्त एक वेदिका स्तंभ के पृष्ठभाग पर यह जातक कथा अंकित है। इसे शिबि जातक के नाम से पुकारा गया है पर यहां दिखलाई पड़ने वाला दृश्य पाली जातक कथा से मेल नहीं खाता। संभवतः यह ब्राह्मण संप्रदाय में प्रचलित राजा शिबि की कथा है जिसने एक कबूतर को बचाने के लिए अपने शरीर का मांस देना स्वीकार किया था।

(११) व्याघ्री जातक (सं. सं ०० जे.५; ३२.२२८०)[२]

दोनों कलाकृतियों में यह जातक-दृश्य बड़े ही घिसे हुए हैं।

उपरोक्त जातक कथाओं के अतिरिक्त मथुरा कला में अधोलिखित दो अन्य जातकों का अंकन भी मिलता है, पर ये कलाकृतियां मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में नहीं हैं।

(क) वलाहस्स जातक[3]

(ख) महिलामुख जातक[४]

बुद्ध जीवन के दृश्य

जातकों के ही समान मथुरा की कलाकृतियों में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाएं अंकित की गई हैं। उनमें से अधोलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(१) जन्म (सं. सं. ००. एच १; ००. एन २ इत्यादि, चित्र ४६)

इन दृश्यों में एक छायादार घने वृक्ष के नीचे एक स्त्री खड़ी दिखलाई पड़ती है जो अपने

[१] वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS.*, खण्ड २४-२५, पृ. १६; कावेल, ई. बी., *The Jatak.*, संख्या ४६६।

[२] वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, खण्ड २४-२५, पृ. ५०।

[3] जे. फोगल, The Mathura School of Sculpture, *ASIR.*, १६०६-१०, पृ. ७२, फलक २६ सी.।

[४] इसकी पहचान लेखक द्वारा ही सर्वप्रथम की जा रही है। यह कलाकृति इस समय कलकत्ते के संग्रहालय में है :
जे. फोगल, *La Sculpture de Mathura* फलक २० ए; कावेल, ई. बी., *The Jataka*, भाग २ संख्या २६,१९६

उठे हुये दाहिने हाथ से वृक्ष की शाखा थामे रहती है और बाएं हाथ से बगल ही में खड़ी हुई दूसरी स्त्री का सहारा-सी लेती रहती है। उसकी दाहिनी ओर एक मुकुटधारी देवता नवजात शिशु को लेने के लिए दोनों हाथ फैलाये रहता है। इस दृश्य की मूलकथा निम्नांकित है :

गौतम बुद्ध जिन्हें पहले कुमार सिद्धार्थ कहते थे, कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के बेटे थे। इनके जन्म से ही लोगों की सारी इच्छाएं सिद्ध हो गईं थीं इसलिए इन्हें सिद्धार्थ कहा जाता था।[१] इनकी मां का नाम मायादेवी था जो कुमार के जन्म के समय लुम्बिनी (रुम्मनदेई-नेपाल) के उद्यान में एक शालवृक्ष के नीचे खड़ी थीं। उन्होंने अपने दाहिने हाथ से वृक्ष की टहनी को पकड़ लिया था। दैवी प्रभाव के कारण बोधिसत्त्व ने साधारण मनुष्यों की तरह से जन्म नहीं लिया अपितु अपनी माता के दाहिने पार्श्व से वे प्रगट हुए। सर्वप्रथम उन्हें शक्र और ब्रह्मा ने अपने हाथों में लिया। ये दोनों देवता मायादेवी के पास ही खड़े थे। माया के पास दिखलाई पड़ने वाली दूसरी स्त्री सम्भवत: उनकी बहिन महाप्रजापति गौतमी है।

(२) प्रथम स्नान (सं. सं. ००. एच २)

इस शिलाखण्ड पर जो दृश्य बना है उसमें ऊँचे आसन पर एक नग्न मानव खड़ा है और उसके अगल-बगल दो मनुष्याकृति सर्प हाथ जोड़े हुए दिखलाई पड़ते हैं। बिलकुल ऊपर की ओर शंख, बांसुरी, मृदंग, और ढोल ये पांच वाद्य बने हुए हैं जो पंचतूर्य के नाम से पहिचाने जाते थे। स्पष्टत: ये वाद्य स्वर्गीय संगीत का प्रतिनिधित्व करते हैं। कथा का रूप इस प्रकार है :

बोधिसत्त्व के जन्म लेते ही वहाँ पर एक कमल उत्पन्न हुआ जिस पर वे खड़े हो गये। तत्पश्चात् नंद और उपनन्द नामक दो नाग राजाओं ने आकाश में ठंडे और गर्म पानी की दो धाराएं उत्पन्न कीं जिनसे बोधिसत्त्व को प्रथम स्नान कराया गया।[२]

(३) जम्बू वृक्ष के नीचे कुमार सिद्धार्थ

इस दृश्य को अंकित करने वाला शिलाखण्ड इस समय दिल्ली के संग्रहालय में है।[३] कथा निम्नांकित है :

कुमार सिद्धार्थ अपने साथियों के साथ कृषिग्राम गये। वहाँ पर उन्होंने एक सुन्दर जम्बू वृक्ष देखा जिसकी शीतल छाया बड़ी सुहावनी थी। उसी समय उन्होंने एक मुट्ठी-भर घास लेकर वृक्ष के नीचे आसन बनाया और स्वयं ध्यान में लीन हो गये।[४]

[१] **ललितविस्तर**, ७, पृ. ६६ जातमात्रेण सर्वार्थाः संसिद्धाः।

[२] **जे. फोगल,** The Mathura School of Sculpture, *ASIR.*, १९०६-७ पृ. १५२।

[३] *A Guide to the Galleries of the National Museum of India*, New Delhi, १९५६ पृ. ३।

[४] मिलाइये **ललितविस्तर**, ११.१९, पृ. ९३।

(४) गृह परित्याग

मथुरा कला में इस दृश्य का अंकन कम स्थानों पर हुआ है। एक तो मथुरा के संग्रहालय में है (सं. सं. ००.एच ३) जो अब बहुत ज्यादा घिस चुका है। दूसरा लखनऊ संग्रहालय में है (लखनऊ सं. सं. बी ८४)। परन्तु इसका सबसे अच्छा उदाहरण वह है जिसे डा. फोगल ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ में प्रकाशित किया है।[1]

संसार के दुःखों का कारण पता लगाने को तीव्र इच्छा से कुमार सिद्धार्थ ने एक रात्रि को अपना प्रासाद, सुंदरी पत्नी, नवजात शिशु और सभी प्रकार के भोगविलासों का परित्याग कर दिया। कंठक नाम के घोड़े पर बैठकर सेवक छंदक के साथ वे चुपचाप शहर से चले गये। लगभग छह योजन चलने के बाद वे घोड़े से उतर पड़े। अपना राजकीय वेष और सारे आभूषण उन्होंने छंदक को दिये और घोड़े के साथ उसे लौटने की आज्ञा दी। कुमार को इस प्रकार प्रव्रजित होते हुये देखकर केवल छंदक का ही नहीं बल्कि उस घोड़े का भी दिल भर आया परन्तु आज्ञा पालन करने के लिए उन्हें लौट जाना पड़ा।

(५) बुद्ध का मुट्ठी भर घास लेकर बोधिवृक्ष के पास पहुँचना (सं. सं. १८.१३८६)

दरवाजे की धन्नी पर बने हुए एक दृश्य में बुद्ध की आवक्ष मूर्ति दिखलाई पड़ती है जो उठे हुये बाएं हाथ से वृक्ष की शाखा को पकड़े है। उसके वक्षस्थल के पास तक उठे हुये दाहिने हाथ में किसी चीज की एक गड्डी-सी है। दृश्य की पार्श्व भूमि इस प्रकार है :

सुजाता की दी हुई खीर का सेवन करने के बाद जब कुमार सिद्धार्थ ने ध्यानस्थ होने का विचार किया तब वे आसन के लिए घास खोजने लगे। इतने में रास्ते के दाहिनी ओर उन्हें स्वस्तिक नाम का घसियारा दिखलाई पड़ा। उससे उन्होंने मुट्ठी-भर घास मांगी और वे बोधिवृक्ष की ओर चल पड़े।[2]

(६) मार का आक्रमण (सं. सं. ००.एच १;००.एन २ इत्यादि)

बुद्ध के जीवन की प्रमुखतम घटना होने के कारण मथुरा कला में इसका अंकन अनेक स्थानों पर मिलता है। भूमिस्पर्श मुद्रा में बोधिवृक्ष के नीचे सिद्धार्थ बैठे हुये हैं। उनके पैरों के पास या आसन के नीचे मार या कामदेव बाण मारते हुए अथवा गर्दन झुकाये हुए दिखलाई पड़ता है। उसका चिह्न मीनध्वज भी बहुधा दिखलाई पड़ता है। कथा इस प्रकार है :

कुमार सिद्धार्थ को सच्चे ज्ञान को पाने का प्रयास करते हुए देख कर मार ने उनके मार्ग में बाधाएं खड़ी करने का निश्चय किया। प्रथम तो उसने अनेक प्रकार के शस्त्रों को धारण करने वाले भयानक मुखों वाले सैनिकों की सेनाएं भेजीं पर सिद्धार्थ निश्चल रहे। मार

[1] फोगल, *La Sculpture De Mathura*, फलक ५१ ए।

[2] ललितविस्तर, १९, पृ० २०७-८।

के प्रयत्न को देखकर दाहिने हाथ से भूमि को छूते हुए अथवा उसकी शपथ लेते हुये मार के प्रति उन्होंने यह प्रतिज्ञा वाक्य कहे, 'रे मार ! इस पक्षपातविहीन, चर-अचर को समान रूप से सुख देने वाली पृथ्वी को साक्षी बना कर मैं शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने निश्चय और प्रतिज्ञा से कदापि नहीं डिगूँगा।'[1] अपने प्रथम प्रयास में इस प्रकार पराभव पाकर मार ने अपनी कन्याओं को अर्थात् स्वर्ग की अप्सराओं को बुलवाया और बोधिसत्त्व के मन को चंचल करने के लिए उन्हें भेजा। काम की इन सहेलियों ने बत्तीस प्रकार की स्त्री-मायाओं[2] का प्रदर्शन किया और भांति-भांति से बोधिसत्त्व का चित्त चंचल करने का प्रयास किया परन्तु वे भी पूरी तरह असफल रहीं।

इस प्रकार अपने सभी प्रयत्नों में असफलता गले बांधकर मार को अपनी पराजय का घोर दुःख हुआ वह मुंह लटका कर एक ओर बैठ गया।

(७) दो श्रेष्ठियों द्वारा भोजनदान

यह कलाकृति राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है।[3] बुद्ध के संबोधि प्राप्त करने के सात सप्ताह बाद त्रपुष और भल्लिक नाम के दो व्यापारी अपने अनुयायियों के साथ उस प्रदेश में आये। काशायवस्त्र पहने हुये संबुद्ध कुमार सिद्धार्थ को, जो महापुरुष के बत्तीस लक्षणों से सुशोभित थे, देखकर दोनों ने उन्हें प्रणाम किया और बुद्ध को प्रथम भोजन देने का सम्मान प्राप्त किया।[4]

(८) लोकपालों द्वारा भिक्षापात्रों का दान (सं. सं. ००.एच १२)

इस शिलाखण्ड पर एक ऊंचे आसन पर बुद्ध बैठे हुये हैं, उनके चारों ओर मुकुटधारी चार भद्र पुरुष हैं जिनके हाथों में एक-एक पात्र है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार ये लोकपाल हैं।

[1] **ललितविस्तर.** २१. ८८, पृ० २३३—

इयं मही सर्व जगत् प्रतिष्ठा।
अपक्षपाता सचराचरेसमा॥
इयं प्रमाणं मम नास्ति मे मृषा।
साक्षित्वमस्मिं मम संप्रयच्छतु॥

[2] **ललितविस्तर** (मारधर्षण परिवर्त, २१, पृ. २३३-३४) में वर्णित इन स्त्री-मायाओं में से कई मथुरा कला के वेदिकास्तम्भों पर चित्रित की गई हैं। कुछ के उदाहरण निम्नांकित हैं :

(क) बाहूनुत्क्षिप्य विजृम्भमाणान् कक्षान् दर्शयन्तिस्म (सं. सं. १५.९७७)

(ख) उन्नतान्कठिनान्पयोधरान्दर्शयन्तिस्म (सं.सं.१३.२८६)

(ग) अर्धनिमिलितैर्नयनैः बोधिसत्त्वं निरीक्षन्तेस्म (सं. सं. ००.जे१२)

(घ) शिरः स्वंसेषु च पत्रगुप्तांशुकसारिकांश्चोपविष्टानुपदर्शयन्तिस्म (सं. सं. १७.१३०७, १२.२५८)

[3] *A Guide to the Galleries of the National Museum of India*, १९५६, पृ. ३।

[4] **ललितविस्तर**, २४, पृ. २७६-७७।

अभिसंबुद्धकुमार सिद्धार्थ का प्रथम भोजन करने का समय निकट आया हुआ जानकर वैश्रवण, धृतराष्ट्र, विरूधक और विरूपाक्ष नाम के चार लोकपाल वहां पर आये। प्रथम तो वे सोने के पात्र लाये थे जिनको बुद्ध ने स्वीकार नहीं किया। इसके बाद क्रमशः वे वैडूर्य, स्फटिक और मसारगल्ल नामक रत्नों के पात्र लाये पर वे सभी अस्वीकृत होते गये। अन्त में वे शिलामय पात्रों को ले आये जो भिक्षु के लिए उपयुक्त थे। बुद्ध ने अपने प्रभाव से इन चार शिलापात्रों को एक पात्र में परिणत कर दिया जिसका उपयोग उन्होंने त्रपुष और भल्लिक के द्वारा दिए गए भोजन के लिए किया।[1]

(९) महाब्रह्मा और इन्द्र का आगमन (सं. सं. ३६.२६६३, चित्र २७)

बहुत बार बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध का कोई प्रतीक चिह्न जैसे उनका प्रभामण्डल अथवा स्वयं बुद्ध बने रहते हैं और अगल-बगल में मुकुटधारी इन्द्र और जटाधारी ब्रह्मा नमस्कार मुद्रा में दिखलाई पड़ते हैं। ललितविस्तार हमें बतलाता है कि सम्बोधि प्राप्त करने के बाद महा-ब्रह्मा और शक्र कई बार बुद्ध के पास यह प्रार्थना करने के लिए आये कि वे अपने नवीन ज्ञान का उपदेश लोगों को करें। बड़ी कठिनाइयों के बाद बुद्ध के द्वारा यह प्रार्थना स्वीकार की गई।[2]

(१०) धर्म-चक्र-प्रवर्तन (सं. सं. ००. एच १५९.४७४०, चित्र ५२)

बुद्ध द्वारा धर्मचक्र का प्रवर्तन दिखलाने वाले दृश्य अन्य स्थानों के समान मथुरा में भी विपुल हैं। इसमें या तो आसनस्थ बुद्ध व्याख्यान-मुद्रा में दिखलाये जाते हैं, या सही अर्थ में धर्मचक्र को चलाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। बहुधा वे शिष्यों से घिरे हुए रहते हैं। बौद्ध कथायें हमें बतलाती हैं कि शक्र और महाब्रह्मा की प्रार्थना को स्वीकार कर बुद्ध वज्रासन से उतर पड़े और वाराणसी की ओर चले। वहां पर सारनाथ में, जिसे उस समय इसिपतन कहते थे, उन्हें उनके पुराने पांच साथी मिले जो आगे चल कर पंच भद्रवर्गीय भिक्षु कहलाये। इन भिक्षुओं को उन्होंने सर्वप्रथम 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' अपना अमूल्य उपदेश दिया और इस प्रकार अपने धर्मचक्र को गति दी।

रूपकात्मक भाषा का प्रयोग करते हुए ललितविस्तर बतलाता है कि इस प्रकार बारह

[1] **ललितविस्तर** २४, पृ. २७६-७७।

[2] **ललितविस्तर** २५, पृ. २८७-९२।

अभूच्च ते पूर्वभवेष्वियं मतिः। तीर्णः स्वयं तारयिता भवेयम्।
असंशयं पारगतोऽसि सांप्रतं। सत्यां प्रतिज्ञां कुरु सत्यविक्रमः ॥३२
धर्मोल्कया विषम मुनेऽन्धकारा। उच्छ्रेपय त्वं हि तथागतध्वजम्।
अयं स कालः प्रतिलाभ्युदीरणे। मृगाधिपो वा नद दुन्दुभिस्वरः ॥३३

तिल्लियों वाले, तीन रत्नों से सुशोभित धर्मचक्र को कौडिन्य, पंच भद्रवर्गीय, छह करोड़ देवता तथा अन्यान्य लोगों के सम्मुख भगवान बुद्ध द्वारा चलाया गया ।[1]

(११) श्रावस्ती के चमत्कार (सं. सं. १३.२९०)

इस प्रतिमा में बुद्ध खड़े हैं और उनके कन्धों से ज्वालाएं निकल रही हैं । इस कलाकृति में बुद्ध के प्रातिहार्य का चित्रण है जो उन्होंने श्रावस्ती (आज का सहेत-महेत) में किया था । बौद्ध कथाओं के अनुसार[2] अन्य मतों के आचार्यों द्वारा चुनौती दी जाने पर भगवान बुद्ध ने भी अपना प्रभाव दिखलाने के लिए श्रावस्ती में प्रातिहार्य करने का निश्चय किया । पूर्व-निश्चित समय पर सारे जनसमूह के सम्मुख उन्होंने चार प्रातिहार्य या चमत्कार दिखलाये । ये चार प्रातिहार्य ज्वलन, तपन, वर्षण और विद्योतन के नाम से पहिचाने जाते हैं । आकाश में स्थित बुद्ध के शरीर से जनता ने ज्वालाएं, गर्मी, जल और प्रकाश को निकलते देखा । प्रस्तुत प्रतिमा में ज्वलन प्रातिहार्य दिखलाया गया है ।

(१२) बुद्ध दर्शन के लिए इन्द्र का आगमन अथवा इन्द्रशिला गुफा का दृश्य (सं.सं. ००.एच ११; ००. एन ३)

मथुरा कला में इस दृश्य का चित्रण विपुलता से पाया जाता है । अन्यत्र यथा बुद्ध-गया, सांची, अमरावती एवं स्वातनदी की घाटी में भी[3] इसका अंकन मिलता है । मथुरा की कलाकृतियों में बहुधा किया गया गुफा का अंकन दिव्यावदान के वर्णन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है ।[4] पर्वत की गुफा उसमें बैठे हुए बुद्ध, वन का प्रातिनिध्य करने वाले सिंह और मयूर, वीणा पर गायन करने वाला गन्धर्व तथा ऐरावत के साथ इन्द्र का लेखन बड़े ही सुन्दर प्रकार से हुआ है । कथा निम्नांकित है :

१ **ललितविस्तर**, २६, ४२-४६, पृ. ३०५ ।

एवं हि द्वादशाकारं धर्मचक्रंप्रवर्तितम् ।
कौण्डिन्येन च आज्ञातं निर्वृत्ता रतनात्रयः ।।
बुद्धो धर्मश्च संघश्च इत्येतद्रतनात्रयम् ।
× × ×
कौडिन्यं प्रथमं कृत्वा पंचकाश्चैवभिक्षवः ।
षष्टीनां देवकोटीनां धर्मचक्षुर्विशोधितम् ।।

२ **दिव्यावदान**, १२, पृ. १०० ।

३ वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS.*, खण्ड २३, पृ. १२५-२६ ।

४ मिलाइये—**दिव्यावदान** ३८, मैत्रकन्यकावदान, श्लोक ७२-७३, पृ. ५०२ ।

एक समय बुद्ध राजगृह के पास एक गुफा में बैठे हुए थे। वहाँ उनका पूजन करने के लिए देवराज इन्द्र आया। उसके साथ ऐरावत हाथी तथा अन्तःपुर की अन्य रमणियाँ भी थीं। बुद्ध समाधि में थे। उस समय वहां गन्धर्वराज पंचशिख ने मधुर गायन किया तथा देवराज ने तथागत का पूजन किया।

(१३) नालागिरि हाथी का दमन

इस दृश्य का अङ्कन यहाँ कम मिलता है। लखनऊ के राज्य-संग्रहालय[१] में केवल एक ऐसी प्रतिमा है जिसमें बुद्ध खड़े हैं और उनके पैरों के पास नालागिरि हाथी पैर झुकाये बैठा है। इस हाथी को मदान्ध बनाकर देवदत्त द्वारा बुद्ध पर छोड़ा गया था, पर तथागत के प्रभाव से वह नम्र हो गया।

(१४) बुद्ध का स्वर्ग से अवतरण (सं. सं. ००.एन २; ३६.२०६८; चित्र २८)

इस दृश्य को पहिचानने का मुख्य लक्षण तीन सीढ़ियों का बनाया जाना है, जिनमें से निचली सीढ़ी के नीचे नमस्कार मुद्रा में झुकी हुई एक स्त्री भी दिखलाई पड़ती है। कुछ नमूनों में इन सीढ़ियों पर तीन प्रतिमाएं भी बनी रहती हैं।

बुद्ध के स्वर्गावतरण की कथा इस प्रकार है। संबोधि की प्राप्ति के बाद बुद्ध अपनी माता को उपदेश देने के लिए स्वर्ग में गए। वहाँ पर तीन महीने रहकर उन्होंने अनेक उपदेश दिये। तदुपरान्त वे संकाश्य (वर्तमान संकिस्सा) नामक स्थान पर पृथ्वीतल पर उतर आये। इस समय स्वर्ग से तीन सीढ़ियाँ लगाई गई। एक सोने की, दूसरी रत्नों की तथा तीसरी चाँदी की थी। बीचवाली सीढ़ी से बुद्ध उतरे तथा अगल-बगल वाली सीढ़ियों से शक्र और ब्रह्मा उनके साथ आये। उत्पलवर्णा नाम की भिक्षुणी ने सर्वप्रथम उन्हें देखा और उनका स्वागत किया। मूर्तियों में सीढ़ी के पास झुकी हुई स्त्री यही उत्पलवर्णा हैं।

(१५) बालकों द्वारा बुद्ध को धूलि-दान (सं. सं. ००.एच १०)

इस संग्रहालय में अब तक संगृहीत मूर्तियों में केवल एक ही स्थान पर यह दृश्य अङ्कित है। गांधार कला में भी इसके नमूने देखे जा सकते हैं।[२] प्रस्तुत शिलाखण्ड पर भिक्षापात्र फैलाकर खड़े हुए बुद्ध के सामने नमस्कार मुद्रा में झुकी हुई दो नन्हीं-सी मानव आकृतियाँ बनीं हैं। बौद्ध कथाएं हमें इस दृश्य को समझने में बड़ी सहायता करती हैं।

एक बार बुद्ध राजगृह में भिक्षाटन कर रहे थे। रास्ते में उन्हें दो बालक जिनका

[१] लखनऊ संग्रहालय संख्या बी ३५६।

[२] एन. जी. मजुमदार, *A Guide to the Sculpture in the Indian Museum*, १९३७, खण्ड २, पृ. ५८।

नाम जय और विजय था धूल से खेलते हुए मिले। इनमें से एक बालक ने मुट्ठी-भर धूल बुद्ध के भिक्षापात्र में यह कहकर डाल दी कि यह जौ का आटा है, दूसरा इस घटना को देखता रहा। बुद्ध ने इस पांशु अंजलि को बड़े प्रेम से स्वीकार किया और भविष्यवाणी की कि धूलिदान करने वाला बालक भविष्य में सम्राट् अशोक होगा।[1]

(१६) नंद और सुन्दरी की कथा (सं. सं. १२.१८६, लखनऊ संग्रहालय संख्या जे ५३३)

अश्वघोष के प्रमुख काव्य सौंदरानन्द की यह मुख्य कथावस्तु है। इसका अङ्कन मथुरा में नहीं अपितु गांधार कला में भी हुआ है। मथुरा कला में इसका उपयोग द्वार स्तम्भों को सजाने के लिए किया गया है, जिसका सबसे सुन्दर उदाहरण इस समय लखनऊ के राज्य संग्रहालय में है।

अश्वघोष द्वारा वर्णित कथा हम नीचे दे रहे हैं।[2] धम्मपद की टीका में दी हुई कथा में थोड़ा अन्तर है। शाक्य वंश के एक कुमार का नाम नंद था। सुन्दरी उसकी पत्नी थी। एक समय अपने महल के ऊपर वाले मंजिल पर जब दोनों पति-पत्नी विहार कर रहे थे, उस समय बुद्ध ने नंद के प्रासाद में भिक्षार्थ प्रवेश किया। सेवकों ने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया और न उनके आगमन की कोई सूचना दी। फलतः किंचित रुककर बुद्ध बाहर चले गये। उनका इस प्रकार असम्मानित होकर जाना महल की छत पर खड़ी एक सेविका देख रही थी। उसने नंद को यह समाचार दिया। तत्काल नन्द अपनी प्रियतमा की आज्ञा लेकर सौध पर से उतर आया और बुद्ध के पीछे चला। मार्ग में ही उसने बुद्ध को प्रणाम किया और अपराध के लिए क्षमा-याचना की। बुद्ध नन्द को अपने मठ में ले गये और बहुत कुछ उसकी इच्छा के विरुद्ध ही उन्होंने उसे प्रव्रजित भी किया। वे बार बार उसे भौतिक सुखों का परित्याग करने का उपदेश देते थे। पर नन्द पर इन उपदेशों का कोई प्रभाव न पड़ा, वह सदैव खिन्न ही रहा करता था। तब एक दिन बुद्ध उसे अपने साथ स्वर्ग ले गए और वहाँ की अनिंद्य सुन्दरियों का उसे दर्शन कराया। अब उनके सामने नन्द को सुन्दरी का सौन्दर्य फीका मालूम पड़ने लगा और उन्हें पाने की इच्छा जग उठी। बुद्ध ने उन्हें बतलाया कि उन्हें पाने के लिए घोर तप करना होगा। नन्द ने तपस्या प्रारम्भ की। शनैः-शनैः बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनन्द ने वैराग्य की भावना जगाई। अन्ततोगत्वा सभी प्रकार के ऐहिक और पारलौकिक सुखों का परित्याग कर नन्द सच्चा विरक्त भिक्षु बन गया।

[1] **दिव्यावदान** २६—पांशुप्रदानावदान, पृ. २३०।

[2] एन. जी. मजुमदार, *A Guide to the Sculpture in the Indian Museum*, १९३७, खण्ड २, पृ. ५२।

(१७) तपस्वी ब्राह्मण बावरी की कहानी (सं. सं. ०० ज.२, ऊपरी भाग)

एक वेदिका स्तम्भ के ऊपरी फुल्ले में यह दृश्य अंकित है। यहाँ एक छत्रधारी व्यक्ति श्रोताओं के बीच कोई भाषण दे रहा है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार यह निम्नांकित कथा का चित्रण है :[1]

गोदावरी के तट पर अपने सोलह शिष्यों के साथ बावरी नाम का एक तपस्वी ब्राह्मण रहता था। उसके पास एक दिन एक ब्राह्मण आया और ५०० मुद्राओं की याचना करने लगा। उक्त धनराशि को न पाकर उसने बावरी को शाप दिया कि आज से सातवें दिन तुम्हारे मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे। बावरी को इस पर घोर दुःख हुआ पर किसी दयालु देवता ने उसे बुद्ध के पास जाने का सुझाव दिया। अपने सभी शिष्यों को लेकर यह बुद्ध के पास पहुँचा जहाँ प्रत्येक ने बुद्ध से एक-एक प्रश्न पूछा। सबको समाधानकारक उत्तर देकर बुद्ध ने सन्तुष्ट किया।

(१८) बुद्ध का महापरिनिर्वाण (सं. सं. ००.एच ७, ००·एच ८, ००· एच २, इत्यादि)

बुद्ध जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना होने का कारण इसका अङ्कन कई स्थानों पर मिलता है। जब बुद्ध की मृत्यु हुई उस समय उनकी आयु ८० वर्ष की थी। वे उन दिनों कुशीनगर (कसिया, जिला देवरिया, उत्तर प्रदेश) को जा रहे थे। अपना अंत निकट जानकर उन्होंने आनन्द से दो शाल वृक्षों के बीच चौकी लगाने के लिए कहा, और सिरहाना उत्तर की ओर करके दाहिनी करवट पर लेट गये। इसी समय एक घुमक्कड़ साधु, जिसका नाम सुभद्र था, वहाँ आया। यही बुद्ध का अन्तिम शिष्य हुआ। अंत में अपने सभी शिष्यों को निर्वाण के लिए अनन्त प्रयत्न करते रहने का आशीर्वाद देकर भगवान बुद्ध ने अपना पार्थिव देह त्याग दिया। उस समय वहाँ उनके अपने शिष्य, अन्तिम भिक्षु सुभद्र, कुशीनगर के मल्ल शासक आदि के अतिरिक्त कई देवतागण भी उपस्थित थे।

कलाकृतियों में राजा के समान दिखलाई पड़ने वाला पुरुष बहुधा मल्लों का अधिपति है। नीचे की ओर ध्यानस्थ सुभद्र है तथा अन्य भिक्षु शोकमुद्रा में खड़े हैं। वृक्ष के ऊपर वृक्ष-देवता भी दिखलाई पड़ता है।

अन्य बौद्ध दृश्य

(क) रामग्राम में नागों द्वारा स्तूप का संरक्षण (सं. सं.०० जे ७१ पृष्ठ भाग)

बहुधा कलाकृतियों में ऐसे भी स्तूप दिखलाई पड़ते है जो नागों द्वारा घिरे हुये रहते हैं। इस प्रकार का स्तूप रामग्राम के प्रसिद्ध स्तूप का चित्रण माना जाता है जिसमें बुद्ध के पवित्र अवशेष रखे हुये थे। बात यह थी कि बुद्ध के महानिर्वाण के उपरान्त उनकी धातुओं या पाञ्चभौतिक

[1] वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS.*, खण्ड २४-२५, पृ. ४।

अवशेषों को आठ भागों में विभक्त कर आठ स्तूप बनाये गये थे। उसमें एक रामग्राम का स्तूप भी था। अशोक ने आगे चलकर इनमें से सात स्तूपों को खोला और उनमें निहित पवित्र अवशेषों को लेकर चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण कराया। परन्तु वह आठवां अर्थात् रामग्राम का स्तूप नहीं खोल सका क्योंकि उसका संरक्षण नागगण बड़ी सावधानी से करते थे।

(ख) **लंका के राजा द्वारा सुमन की सहायता से बुद्ध-धातु की प्राप्ति (सं. सं. १७.१२७०)**[1]—एक पाषाण खण्ड पर चलता हुआ अलंकृत हाथी बना है तथा 'शस्तख धतु' ये शब्द लिखे हैं। कथा इस प्रकार है:

लंका में बुद्ध के धातु-अवशेष न होने के कारण महेन्द्र लंका का परित्याग करना चाहते थे। वहाँ के राजा ने उन्हें ऐसा न करने की प्रार्थना की तथा सुमन को भेजकर भारत से उसने बुद्ध के धातु-अवशेष प्राप्त करने का निश्चय किया। सुमन भारत आये, फिर वे स्वर्ग गये जहाँ से इन्द्र द्वारा उन्हें बुद्ध के गले की दाहिनी हड्डी (दक्खिनक्खक) मिली। लंका में राजकीय हाथी के मस्तक पर उसे पधराकर उसका विशेष सम्मान किया गया।

पूजन दृश्य

कथा दृश्यों के अतिरिक्त कई दृश्यों में भक्तगण स्तूप, धर्मचक्र, गंधकुटी या बुद्ध का निवास स्थान, बोधिवृक्ष का मन्दिर या इस प्रकार की पूजनीय वस्तुओं का पूजन करते हुए, अथवा हाथों में पूजन सामग्री लेकर चलते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कुछ दृश्यों में स्तूपों का पूजन करने वाले किन्नर और सुपर्ण भी देखे जा सकते हैं (चित्र १२)। इन्हें आकाश में उड़ता हुआ दिखलाया गया है।

ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित कथाएं

मथुरा की कलाकृतियों में इस प्रकार की कथाओं की संख्या बहुत ही थोड़ी है। निम्नांकित कथा-दृश्य विशेष महत्त्वपूर्ण है :—

(१) **वसुदेव का कृष्ण को गोकुल ले जाना (सं. सं १७.१३४४, चित्र ५८)**

एक शिलाखण्ड पर कृष्ण-चरित्र से सम्बन्धित इस कथा का अंकन किया गया है। उन दिनों मथुरा में कंस का शासन चल रहा था उसके पिता उग्रसेन के एक मंत्री का नाम वसुदेव था। वसुदेव के कार्यों से प्रसन्न होकर कंस ने अपनी बहन देवकी उनके साथ ब्याह दी पर बारात के समय ही भविष्यवाणी हुई कि वसुदेव और देवकी के आठवें पुत्र के हाथ से कंस का निधन होगा। यह सुनते ही कंस ने दोनों को कारागृह में डलवा दिया और वहाँ पर

[1] वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS.*, खण्ड २४-२५, पृ. १५१-५२।

उत्पन्न इनके छह पुत्रों को भी मार डाला। सातवां पुत्र उत्पन्न ही नहीं हुआ अथवा उसकी उत्पत्ति गुप्त रखी गई। आठवें कृष्ण थे। इन्हें कंस के कठोर पंजों से बचाने के लिये वसुदेव ने जन्म के बाद तत्काल ही अपने मित्र नन्द के यहाँ गोकुल पहुँचा दिया। ऐसा करने के लिये उन्हें यमुना को लांघना पड़ा। पानी बरस रहा था, रात का समय था परन्तु कथा हमें बतलाती है कि मार्ग में शेषनाग अपने फणों से इनका संरक्षण करते रहे। प्रस्तुत शिलाखण्ड में यमुना नदी, दोनों हाथ उठाए हुए वसुदेव और शेषनाग स्पष्ट पहिचाने जा सकते हैं।

(२) श्रीकृष्ण का केशी के साथ युद्ध (सं. सं. ५८.४४७६, चित्र ६४)

कृष्ण-लीला से सम्बन्धित कुषाण काल की यह दूसरी कलाकृति है। ऐसा लगता है कि यह भार-संतुलन का कोई एक साधन था जिसके बाहरी भाग पर कृष्ण लीला के दृश्य बने थे। प्रस्तुत शिलाखण्ड पर एक उछलता हुआ पुष्ट घोड़ा बना है जिसकी गर्दन पर किसी पुरुष की लात पड़ रही है। मल्ल विद्या से श्रीकृष्ण का सम्बन्ध होने के कारण हो सकता है कि यह केशी-वध की घटना का अंकन हो। कथा के अनुसार गोकुल में रहने वाले बालक श्रीकृष्ण को मारने के लिए कंस ने अपने अनेक अनुयायी भेजे जिन्होंने विविध रूप लेकर कृष्ण को नष्ट करने का असफल प्रयत्न किया। केशी भी उनमें से एक था जिसने घोड़े का रूप बनाकर कृष्ण पर आक्रमण किया पर अन्त में वह कृष्ण द्वारा मारा गया।[१]

(३) कालिय नाग का दमन (सं. सं. ४७.३३७४ चित्र ८९)

गुप्तोत्तर काल में कालिय दमन की घटना को अंकित करना कलाकारों का प्रिय विषय रहा है। प्रस्तुत मूर्ति भी उसी प्रवृत्ति का एक नमूना है। वैष्णव कथाएं हमें बताती हैं कि उन दिनों यमुना में कालिय नाम का एक भंयकर विषधर सांप रहता था जिसने सम्पूर्ण वातावरण को विषमय बना रखा था। यमुना के जल में गिरे हुए गेंद को निकालने के बहाने से श्रीकृष्ण जल में कूद पड़े और कालिय को पकड़कर उसके फण पर नाचने लगे। कृष्ण ने कालिय पर पूर्ण रूप से विजय पा ली किन्तु नाग की रानियों द्वारा विनय किये जाने पर उन्होंने नाग के जीवन को बचा दिया। कालिय को श्रीकृष्ण ने उस स्थान को छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी।[२]

(४) श्रीकृष्ण का गोवर्द्धन पर्वत उठाना (सं. सं. डी. ४७, चित्र ९०)

यह कलाकृति गुप्तोत्तर काल की है जो श्रीकृष्ण के गोवर्द्धन पर्वत धारण करने के दृश्य

[१] विष्णुपुराण, पंचम अंश, सोलहवाँ अध्याय।

[२] विष्णुपुराण, पंचम अंश, ५, ७, ४४ (गीताप्रेस प्रति)

आनम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्यां मध्यमं शिरः।
आरुह्याभुग्न शिरसः प्रणनर्त्तोरुविक्रमः॥

को अंकित करती है। यह लाल चित्तेदार पत्थर पर बनी है जिसकी गणना मथुरा कला की सुन्दरतम कलाकृतियों में की जा सकती है।[1] मूल कथा का स्वरूप निम्नांकित है :

कृष्ण के कहने पर वृज के लोगों ने वर्षा के देवता इन्द्र की पूजा करने की अपनी पुरानी परम्परा छोड़ दी और उसके विपरीत वे गोवर्द्धन पहाड़ की पूजा करने लगे। इस अपमान से क्रुद्ध होकर इन्द्र ने वृज पर घोर वर्षा करना प्रारम्भ किया। डरे हुए वृजवासी श्रीकृष्ण के पास पहुँचे। इस पर श्रीकृष्ण ने अपने हाथ पर गोवर्द्धन पर्वत उठाकर वृजवासियों के लिए एक विशाल सुरक्षित स्थान का निर्माण किया। सम्पूर्ण वृज को बहा देने के प्रयत्न में अपने को असफल देखकर इन्द्र का गर्व चूर्ण हो गया और उसने आकर श्रीकृष्ण से क्षमा प्रार्थना की।[2]

(५) रावण द्वारा कैलाश को उठाना (सं. सं. ३५.२५७७, चित्र ८३)

गुप्तकाल से मध्यकाल तक इस कथा का अंकन शैव कलाकारों का प्रिय विषय रहा। प्रस्तुत शिलाखण्ड पर एक पर्वत-शिखर पर शिव-पार्वती बैठे हुए दिखलाई पड़ते हैं जिसे एक राक्षस कंधों पर उठाने का असफल प्रयत्न कर रहा है।

इस दृश्य से सम्बन्धित कथा हमें बतलाती है कि एक बार लंका का राजा रावण कुबेर को पराजित करके लौट रहा था। शरवन नामक स्थान के पास आते ही उसके विमान की गति अकस्मात अवरुद्ध हो गई। कारण का पता लगाने पर उसे मालूम हुआ कि उक्त स्थान पर शिव-पार्वती विहार कर रहे हैं। अतएव वहाँ किसी का भी जाना रोक दिया गया है। अपनी गति को कुंठित जानकर अपमानित रावण ने क्रोध से समूचे कैलाश को उखाड़ डालने का निश्चय किया और पूरी शक्ति लगाकर वह ऐसा करने लगा। कैलाश कम्पित हो उठा और उमा भयभीत हो गई। शिव ने इस बात को जान लिया और अपने पैर के अंगूठे से कैलाश को दबा दिया जिसके नीचे रावण भी दबने लगा। अब रावण ने क्षमा प्रार्थना की और बाद में शिव ने उसे क्षमा दान दे दिया।[3]

(६) शृंगी ऋषि की कथा (सं. सं. ००. जे ७; ११.१५१)

मथुरा से मिले हुए एक वेदिका स्तम्भ पर तरुण शृंगी भौचक्का-सा खड़ा है। दूसरे स्थान पर उसे हम राजकुमारी के साथ प्रणय-क्रीड़ा करते हुए पाते हैं।

शृंगी ऋषि की कथा ब्राह्मण साहित्य में ही नहीं बौद्ध साहित्य में भी मिलती है। शृंगी

[1] गोवर्धनधारी कृष्ण की कुषाण-गुप्तकालीन मृण्मयी मूर्ति रंगमहल से मिली है जो आज बीकानेर संग्रहालय में है—**ललितकला**, संख्या ८, फलक २१, चित्र १।

[2] **विष्णुपुराण**, पंचम अंश, १०वाँ अध्याय।

[3] गोपीनाथ राव, *Elements of Hindu Iconography*, खण्ड २, भाग १, पृ. २१७-१८।

एक ऋषि का बेटा था। वह वन में जन्म से ही ऐसे स्थान पर रहा था जहाँ स्त्रियों का दर्शन दुर्लभ था। एक राजा चाहता था कि उसके राज्य में पड़े हुए अकाल की शांति के लिए यह तरुण ब्रह्मचारी वहां आए। अतएव उसने उसे बुलाने के लिए राजकुमारी को भेजा। शनैः शनैः राजकुमारी की काम चेष्टाओं का प्रभाव ब्रह्मचारी पर पड़ता गया और एक दिन वह उसके साथ नौका पर बैठ कर चल पड़ा। बाद में राजा के द्वारा वह राजकुमारी उसके साथ व्याह दी गई।[१]

फुटकर दृश्य

यहां की कलाकृतियों में जैन कथाओं का तो अभाव सा है। एक शिलापट्ट पर, जो इस समय लखनऊ संग्रहालय में है (लखनऊ संग्रहालय संख्या जे. ६२६) तीर्थंकर महावीर के गर्भ के संक्रमण की कथा अंकित है।

दूसरे एक वेदिका स्तम्भ के टुकड़े पर (लखनऊ संग्रहालय जे. ३३४) पंचतंत्र की एक कथा का दृश्य बना हुआ है जिसका सम्बन्ध तीक्ष्णविषाण नामक बैल और प्रलोभक नामक सियार की कथा से जान पड़ता है।

१ वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS*, खण्ड २४-२५, पृ. ७-१०।

मथुरा कला से सम्बन्धित अन्य ज्ञातव्य विषय

पिछले अध्यायों में मथुरा की कला—विशेषतया पुरातत्त्व संग्रहालय मथुरा में प्रदर्शित पाषाण मूर्तियों की कला—का परिचय पूरा हुआ। यह तो स्पष्ट ही है यह परिचय अतिशय संक्षिप्त है और इसलिए इसमें माथुरी कला और इससे सम्बन्धित अनेक बातों का केवल संकेत ही किया गया है। तथापि साधारण पाठक के लिए कुछ बातें ऐसी बच जाती हैं जिनकी किंचित विस्तार से चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मथुरा कला का माध्यम

उत्तर गुप्तकाल के प्रारम्भ तक मथुरा के कलाकारों नें जो मूर्तियाँ बनाई या भवन निर्माण किए उनके लिए उन्होंने एक विशेष प्रकार का लाल चित्तेदार पत्थर काम में लाया। यह पत्थर मथुरा में अब भी विपुलता से व्यवहृत होता है। इसकी प्राप्ति रूपवास, टंकपुर और फतेहपुर सीकरी की खानों से होती है। मूर्ति गढ़ने की दृष्टि से यह पत्थर पर्याप्त मृदु होता है, पर इस पर लोनों का असर अधिक होता है। इसी का फल यह है कि कितनी ही मूर्तियाँ काल के प्रभाव से अब गली जा रहीं हैं। संभव है कि इसके दुर्गुण को देखकर ही मध्यकाल के प्रारम्भ से कलाकारों ने मूर्तियों के लिए उसका प्रयोग करना छोड़ दिया हो।

मथुरा कला का विस्तार

कुषाण और गुप्त काल में कला-केन्द्र के रूप में मथुरा की प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई थी। यहाँ की मूर्तियों की मांग देश भर में तो थी ही पर भारत के बाहर भी यहाँ की मूर्तियाँ भेजी जाती थीं। मथुरा कला का प्रभाव दक्षिण पूर्वी एशिया तथा चीन के शाँत्सी स्थान तक देखा जाता है।[1] अब तक जिन विभिन्न स्थानों से मथुरा की मूर्तियाँ पाई जा चुकी हैं, उनकी सूची[2] निम्नांकित है :

[1] **मार्ग,** खण्ड १५, सं. २, मार्च १९६२, पृ. ३ संपादकीय।

[2] यह तालिका निम्नांकित आधारों पर बनाई गई है—

१–तक्षशिला ...... तक्षशिला, पश्चिमी पाकिस्तान
२–सारनाथ ...... वाराणसी के पास, उत्तर प्रदेश
३–श्रावस्ती ...... सहेतमहेत, जिला गोंडा—बहराइच
४–भरतपुर ...... भरतपुर, राजस्थान
५–बुद्ध गया ...... गया, बिहार
६–राजगृह ...... राजगीर, बिहार
७–साँची या
श्री पर्वत ...... सांची, मध्य प्रदेश
८–बाजिदपुर ...... कानपुर से ६ मील दक्षिण, उत्तर प्रदेश
९–कुशीनगर ...... कसिया, उत्तर प्रदेश
१०–अमरावती ...... अमरावती, जिला गुन्तुर, मद्रास राज्य
११–टण्डवा ...... सहेत-महेत के पास, उत्तर प्रदेश
१२–पाटलीपुत्र ...... पटना, बिहार
१३–लहरपुर ...... जिला सीतापुर, उत्तर प्रदेश
१४–आगरा ...... आगरा, उत्तर प्रदेश
१५–एटा ...... एटा, उत्तर प्रदेश
१६–मूसानगर ...... कानपुर से ३० मील दक्षिण-पश्चिम, उत्तर प्रदेश
१७–पलवल ...... जिला गुड़गाँव, पंजाब
१८–तूसारन विहार ...... प्रतापगढ़ से तीस मील दक्षिण-पश्चिम, उत्तर प्रदेश
१९–ओसियां ...... जोधपुर से ३२ मील उत्तर-पश्चिम, राजस्थान
२०–भीटा ...... देवरिया के पास, जिला इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
२१–कौशाम्बी ...... इलाहाबाद के पास, उत्तर प्रदेश

मथुरा में कला के प्राचीन स्थान

यद्यपि मथुरा कला की कृतियाँ आज भी प्रचुर मात्रा में मिलती हैं, तथापि यह ध्यान देने योग्य बात है जिन स्थानों पर ये मूर्तियां विद्यमान थीं या पूजित होती थीं उन विशाल

(क) मथुरा तथा लखनऊ संग्रहालयों की पंजिकाएँ।
(ख) कुमारस्वामी, *HIIA.*, पृ. ६०, पा. टि. १।
(ग) वही, पृ. ६६, पा. टि. २, ३।
(घ) फेब्री, सी. एल., Mathura of the Gods, **मार्ग**, मार्च १९५४, पृ. १३।
(ङ) संपादकीय, **मार्ग**, खण्ड १५, संख्या २, मार्च १९६२।
(च) प्रयाग संग्रहालय के अध्यक्ष डा. सतीशचन्द्र काला की सूचनाएँ।

भवनों, स्तूपों और विहारों का अव कोई भी चिह्न विद्यमान नहीं है। केवल कहीं-कहीं पर टीले बने पड़े हैं। इसलिये इन स्थानों के प्राचीन नाम आदि जानने के लिए हमें उन शिलालेखों का सहारा लेना पड़ता है जो मथुरा के विभिन्न भागों से मिले हैं। साधारणतया यह अनुमान किया गया है कि जिस स्तूप या विहार का नाम जिस लेख या लेखांकित मूर्ति से मिला है, संभवतः उस विहार के टूटने पर वह मूर्ति वहीं पड़ी रही होगी। अतएव हम मूर्ति के प्राप्ति-स्थान को ही उसमें उल्लेखित स्तूप या विहार की भूमि कह सकते हैं। यदि यह अनुमान सत्य है तो प्राचीन मथुरा के उन सांस्कृतिक केन्द्रों के स्थान कुछ निम्नांकित रूप से समझे जा सकते हैं[१] :

जैन स्थान

१. देवनिर्मित बौद्ध स्तूप ... ... कंकाली टीला

बौद्ध स्थान

१. यशाविहार ... ... कटरा केशवदेव
२. एक स्तूप ... ... कटरा केशवदेव
३. एक स्तूप ... ... जमालपुर टीला
४. हुविष्क विहार ... ... जमालपुर टीला
५. रौशिक विहार ... ... प्राचीन आलीक, संभवतः वर्तमान अड़िग
६. आपानक विहार ... ... भरतपुर दरवाजा
७. खण्ड विहार ... ... महोली टीला
८. प्रावारक विहार ... ... मधुवन, महोली
९. क्रोष्टुकीय विहार ... ... कंसखार के पास
१०. चूतक विहार ... ... माता की गली
११. सुवर्णकार विहार ... ... जमुना बाग, सदर बाजार
१२. श्री विहार ... ... गऊघाट
१३. अमोहस्सी (अमोघदासी) का विहार ... कटरा केशवदेव

[१] प्रस्तुत तालिका निम्नांकित आधारों पर बनाई गई हैं :

(क) वासुदेवशरण अग्रवाल, Catalogue of the Mathura Museum, *JUPHS*.

(ख) जेनेर्ट, के. एल. *Heinrich Luders*, *Mathura Inscriptions*, गाटिंजन, जर्मनी, १९६१।

(ग) अन्य सम्बन्धित लेख व पंजिकाएं।

श्री कृष्णदत्त बाजपेयी ने दो और विहार, मनिहिर और ककाटिका विहार भी गिनाये हैं, पर उनके स्थान नहीं दिये हैं, —**वृज का इतिहास**, भाग २, पृ. ६६।

१४. मधुरावणक विहार ... ... चौबारा टीला
१५. श्रीकुण्ड विहार ... ... हुविष्क विहार के पास
१६. धर्महस्तिक का विहार ... ... नौगवां, मथुरा से ४½ मील द. प.
१७. महासांघिकों का विहार ... ... पालिखेड़ा, गोवर्धन के पास
१८. पुष्यद (त्ता) का विहार ... ... सोंख
१९. लद्यस्क्कविहार ... ... मण्डी रामदास
२०. धर्मक की पत्नी की चैत्य-कुटी ... ... मथुरा जङ्क्शन
२१. उत्तर हारुष का विहार ... ... अन्योर
२२. गुहा विहार ... ... सप्तर्षि टीला

ब्राह्मण सम्प्रदाय

१. दधिकर्ण नाग का मन्दिर ... ... जमालपुर टीला
२. वासुदेव का चतुःशाल मन्दिर ... ... कटरा केशवदेव
३. गुप्तकालीन विष्णु मन्दिर ... ... कटरा केशवदेव
४. कपिलेश्वर व उपमितेश्वर के मन्दिर ... रंगेश्वर महादेव के पास
५. यज्ञभूमि ... ... ईसापुर, यमुना के पार कृष्ण गंगा घाट के सामने
६. पंचवीर वृष्णियों का मन्दिर ... ... मोरा गाँव
७. सेनाहस्ति व भोण्डिक की पुष्करिणी ... छड़गाँव, मथुरा से दक्षिण

अन्य

कुषाण राजाओं के देवकुल ... ... माँट तथा गोकर्णेश्वर

मथुरा कला की प्राचीन मूर्तियों का पुनः उपयोग

मथुरा की कई प्राचीन मूर्तियाँ ऐसी भी हैं जिनका एक से अधिक बार उपयोग किया गया है। ऐसे कुछ नमूने इस संग्रहालय में, कुछ कलकत्ते के और कुछ लखनऊ के राज्य संग्रहालय में हैं। मूर्तियों का इस प्रकार का उपयोग तीन रूपों में किया गया है। एक तो टूटी हुई मूर्ति को पत्थरों के रूप में पुनः काम में लिया गया है। कुछ टूटी हुई तीर्थंकर प्रतिमाओं तथा जैन कथाओं से अंकित शिलापट्टों पर लेख लिखे गये हैं और कुछ को काट-छांट कर उन्हें वेदिका स्तंभ या सूचिकाओं में परिवर्तित कर दिया गया है।[१] हो सकता है कि यह कार्य जैन और बौद्धों के परस्पर संघर्ष के फलस्वरूप किया गया हो। ऐसे संघर्ष के प्रमाण जैन साहित्य में विद्यमान हैं।[२]

[१] लखनऊ संग्रहालय, मूर्ति संख्या जे ३५४ से जे ३५८ तक।

[२] नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, जैनस्तूप और पुरातत्त्व, **श्रीमहावीर स्मृति ग्रंथ,** खण्ड १, १९४८-४९, पृ.१८८८।

दूसरे रूप का उपयोग इससे सर्वथा भिन्न है। इसमें निहित भावना द्वेष मूलक नहीं है, पर बहुधा पहले से बनी बनाई मूर्ति के सौन्दर्य पर रीझकर उसे अपने सम्प्रदाय के अनुकूल बना लेने की है। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण मथुरा संग्रहालय की एक बोधिसत्त्व की मूर्ति (सं. सं. १७.१३४८, चित्र १००) है जिसे वैष्णवों ने त्रिपुंड्र आदि लगाकर अपने अनुकूल बना लिया है।

मूर्तियों के पुनरुपयोग के तीसरे रूप में घिसी या टूटी हुई मूर्ति को अधिक बिगाड़ने की नहीं पर उसको पुनः बनाने की भावना काम करती थी। इसका सबसे अच्छा उदाहरण एक शालभंजिका की विशाल प्रतिमा (सं. सं. ४०.२८८७) है जिसके पैर पुनः गढ़े गये हैं, भले ही यह गढ़ान अपने मूल सौन्दर्य के स्तर नहीं पा सकी है।

माथुरी कला पर प्रकाश डालने वाला प्राचीन साहित्य

मथुरा के इस विशाल कलाभण्डार को समझने के लिए प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिक्षेप करना अत्यन्त आवश्यक है। सबसे अधिक उपयोगी समकालीन साहित्य है, इसके बाद पूर्ववर्ती और परवर्ती साहित्य आता है। माथुरीकला में प्रयुक्त विभिन्न अभिप्रायों की कुंजियाँ इसी साहित्य में छिपी पड़ी हैं। इस कला में प्रदर्शित अभिप्रायों को समझने के लिए तथा इसमें प्रदर्शित वस्तुओं के मूल नाम जानने के लिए हमें साहित्य के पन्ने ही उलटने पड़ते हैं। मथुरा में जैन, बौद्ध व ब्राह्मण तीनों धर्म पनपे, अतएव इन तीनों धर्मों के प्राचीन धर्मग्रन्थ, कलाग्रन्थ, आख्यान और उपाख्यान हमारी बड़ी सहायता करते हैं। इनमें भी निम्नांकित ग्रन्थ इस दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं—१. ललितविस्तर, २. रायपसेंणिय सुत्त, ३. अंगविज्जा, ४. विनयपिटक—महावग्ग और चुल्लवग्ग, ५. अश्वघोष का बुद्ध चरित्र, ६. अश्वघोष का सौदरानन्द, ७. अग्नि, लिंग, मत्स्य, वायु, कूर्म, वाराह, वामन आदि पुराणों के कुछ अंश, ८. महावस्तु, ९. पंचतन्त्र, १०. दिव्यावदान, ११. अवदानशतक, १२. जातक कथाएं।

समापन

मथुरा कला का यह सामान्य परिचय है। भारतीय कला के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में अब तक कई समस्याएं नवीन प्रकाश की अपेक्षा रखती हैं। मथुरा के क्षेत्र में शास्त्रीय ढंग का उत्खनन, समूचे कलासंग्रह का विस्तृत अध्ययन और प्रकाशन आदि कार्य कदाचित् इन समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकेंगे।
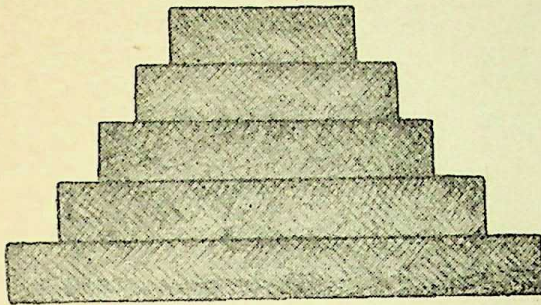
पंचपट्टिका
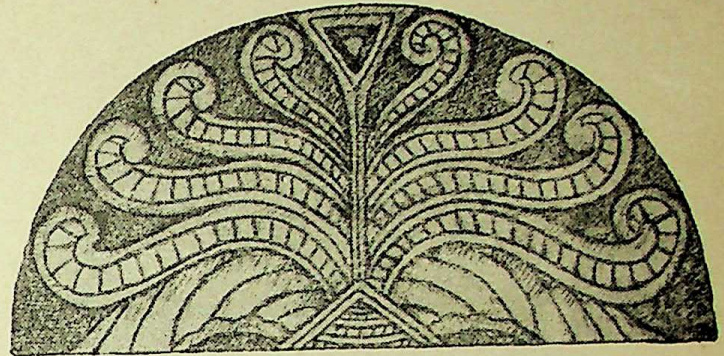
नीलोत्पल ? (Honey suckle)
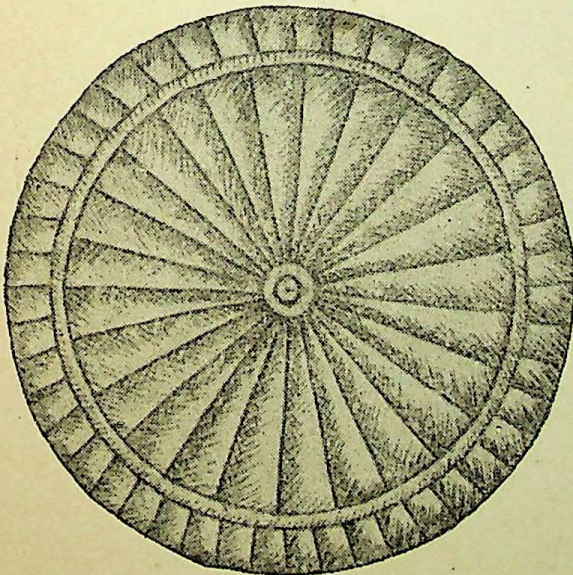
धर्मचक्र
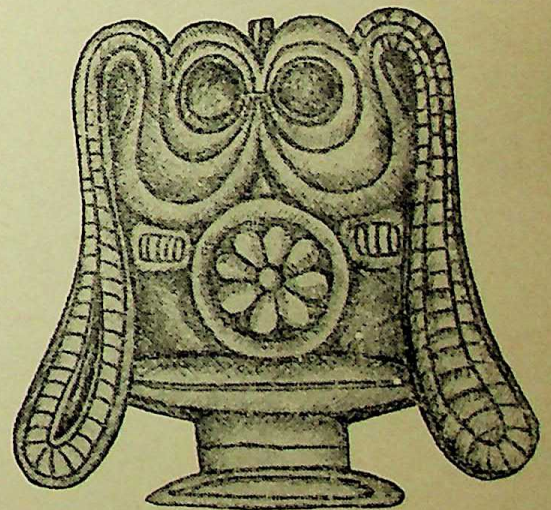
त्रिरत्न

अलंकरण के अभिप्राय
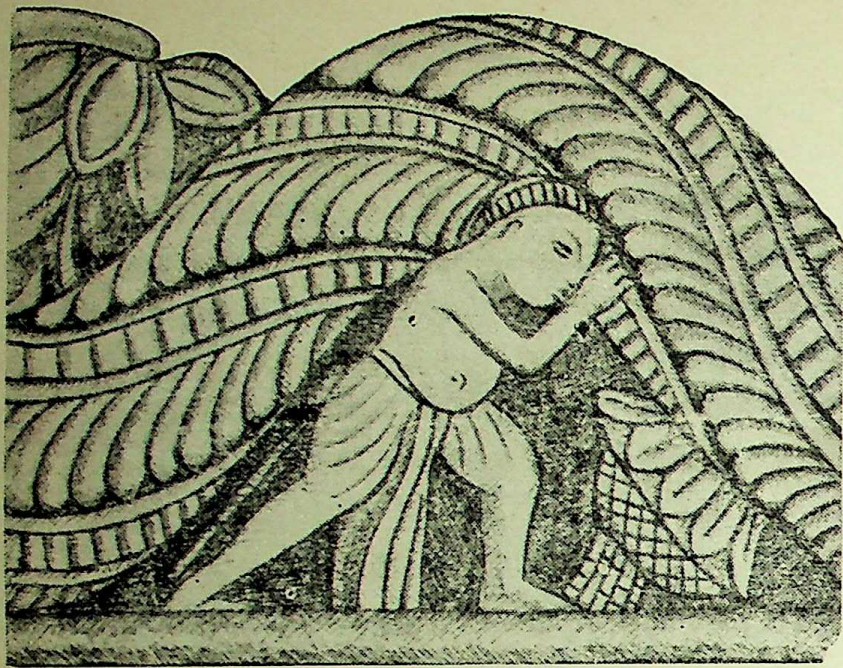
मालाधारी यक्ष
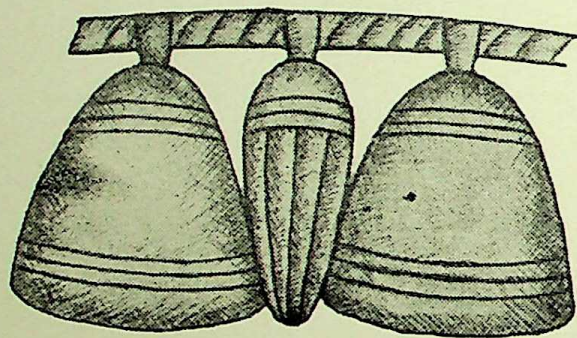
घण्टावलि
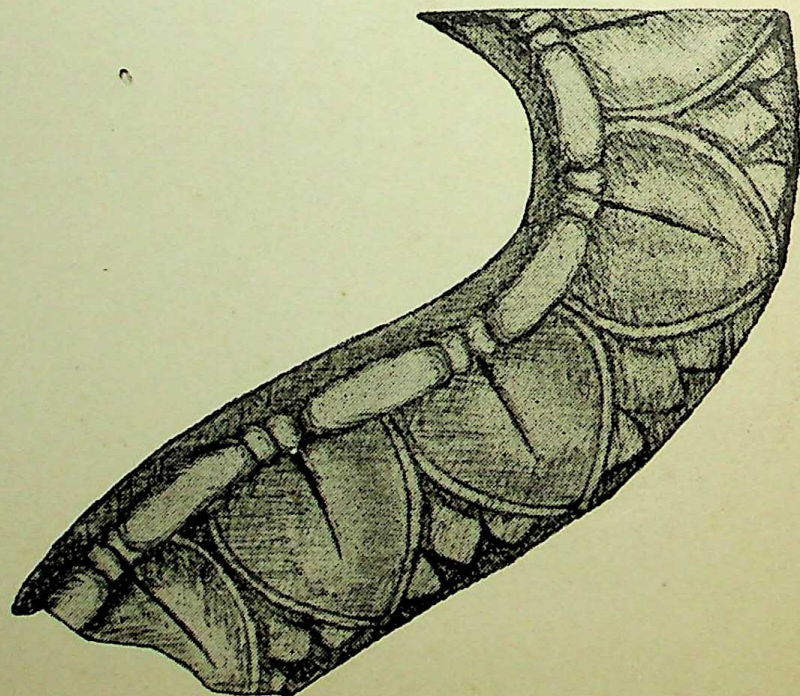
पद्मदल लता

चित्रावली-विवरण

चित्र की क्रमसंख्या के बाद चित्र में प्रदर्शित मूर्ति की पंजिका-संख्या दी गई है। तदुपरान्त मूर्ति का संक्षिप्त परिचय, संभाव्य निर्माण-तिथि एवं प्राप्ति स्थान लिखा गया है। यदि मूर्ति का सन्दर्भ ग्रंथ-भाग में आ गया है तो उस पृष्ठ की संख्या भी कोष्टक में दे दी गई है।

प्रारम्भ से शुङ्गकाल (ईसवी पूर्व ३०० से ईसवी सन् का प्रारम्भ) तक की प्रतिमाएं

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
१	१७.१३०३	नागदेवता की पुरुषाकार प्रतिमा। इसका अंकन ठीक परखम यक्ष के नमूने पर किया गया है। अतएव इसे प्रारम्भिक काल की नाग मूर्ति मानना उचित होगा (पृ. १)। —लगभग ३००-२०० शती ई. पू.
२	००. एल २२	एक सूची के ऊपर बना हुआ मुख-बिम्ब से युक्त फुल्ला। —लगभग २री शती ई. पू.
३	००. जे २	स्त्री मूर्ति से अंकित एक वेदिका स्तम्भ का ऊपरी भाग। रमणी का केशविन्यास और अलंकार दर्शनीय हैं (पृ. ६)। —लगभग २री शती ई. पू. भूतेश्वर से प्राप्त।
४	००. आई ११	भारवाही गुह्यक या यक्ष—एक शिलापट्ट के भाग का विशदीकृत रूप। —लगभग २री शती ई. पू.
५	००. आई १५	चामरधारी भद्रपुरुष। —लगभग २री शती ई. पू.
६	००. आई १८	एक यक्ष प्रतिमा, जिसके एक हाथ में गदा तथा दूसरे पर हाथ जोड़े हुए पुरुष की मूर्ति बनी है। —लगभग २री शती ई. पू.

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
७	४२. २९४४	नागाकार शरीर वाला मानव या व्यालयक्ष । —लगभग २री शती ई. पू.
८	१८. १५१६	वेदिका एवं छत्र-त्रय से सुशोभित बोधिवृक्ष । —लगभग १शती ई. पू. महादेवघाट, मथुरा से प्राप्त ।
९	१४-१५. ४३८	आसन पर स्थापित धर्मचक्र । —लगभग १शती ई. पू. महादेवघाट, मथुरा से प्राप्त ।
१०	५२. ३६२५	वृक्ष के नीचे स्थण्डिल पर स्थापित शिवलिंग का पूजन करते हुये गगनचारी काल्पनिक पुरुष (पृ. १०) । —लगभग १शती ई. पू. भूतेश्वर से प्राप्त ।
११	वही	पृष्ठभाग जिस पर काल्पनिक पशु (ईहामृग) बने हैं (पृ. १३) ।
१२	१०. १३०	स्तूप का पूजन करते हुये गगनचारी देवता (पृ. ५१) । —लगभग १शती ई. पू. वृन्दावन से प्राप्त ।
१३	१५. ५८६	दुःखोपादान जातक (पृ. ३७) । —लगभग १शती ई. पू. यमुना से प्राप्त ।
१४	००. जी, ४८	वृक्ष के नीचे आसन पर बैठकर वीणा बजाती हुई स्त्री । —लगभग १शती गोपालपुर, मथुरा से प्राप्त ।
१५	१४. ४३१	महासुतसोम जातक कथा (पृ. ३८) । —लगभग १शती ई. पू. पीपलवाला कुँआ, मथुरा से प्राप्त ।
१६	१२. १९१	पाद-कुसल-माणव जातक (पृ. ४०) । —लगभग १शती ई. पू.
१७	१९. १५६२	पुष्पपात्र (पड़लग) धारण करने वाला एक उपासक । —लगभग १शती ई. पू. डीग दरवाजा मथुरा से प्राप्त ।
१८	००. ई ७	दण्डधारी राज-पुरुष । —लगभग १शती ई. पू.
१९	वही	पृष्ठ भाग ।
२०	४८. ३४४६	किसी यक्षमूर्ति का मस्तक जिसके कान घोड़े के कान के समान नुकीले बने हैं (शंकुकर्ण) ।

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
		—लगभग प्रथम शताब्दी ई. पू. का उत्तरार्ध अन्तापाड़ा, मथुरा से प्राप्त ।
२१	५६. ४८४१	उष्णीशधारी पुरुष मूर्ति का मस्तक —लगभग प्रथम शताब्दी ई. पू. का उत्तरार्ध सदर बाजार, मथुरा से प्राप्त।

कुषाण काल (लगभग ईसवी सन् के प्रारम्भ से दूसरी शती के अन्त तक) की प्रतिमाएं

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
२२	००. जे ४१	उलूक जातक की कथा (पृ. ४१)। —लगभग १शती जमालपुर टीला, मथुरा से प्राप्त।
२३	००. जे ३६	कच्छप जातक (पृ. ४०)। —लगभग १शती
२४	००. आई १४	रोमक अथवा पारावत जातक कथा; ऊपरी भाग में मालाधारी यक्षों की पंक्ति बनी है (पृ. ३८)। —लगभग १शती ई. पू.
२५	३५-३६. २५६३	स्वस्तिक चिह्न से युक्त लेखांकित आयागपट्ट का एक भाग। —लगभग १शती कठौती कुआँ, मथुरा से प्राप्त।
२६	००. क्यू २	लवणशोभिका द्वारा स्थापित जैन आयागपट्ट जिस पर बने दो चैत्य-स्तम्भ दर्शनीय हैं (पृ. १६-१७)। —१शती ई. मुकुन्द कुआँ, (होली दरवाजे के बाहर), मथुरा से प्राप्त।
२७	३६. २६६३	बुद्ध का एक प्रतीक, प्रभामण्डल। शक्र तथा ब्रह्मा द्वारा उपदेश के लिए बुद्ध की प्रार्थना (पृ. ४६)। —लगभग १शती महावन के पास से प्राप्त।
२८	३६. २८६८	संकाश्य में बुद्ध का स्वर्ग से अवतरण (पृ. ४८)। —लगभग १शती गायत्री टीला, मथुरा से प्राप्त।
२९	५७. ४४४७	कमललता अथा श्रीपर्णीलता से युक्त पूर्णकुम्भ। —लगभग १शती चौरासीटीले के सामने से प्राप्त।

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
३०	५७. ४२६४	मृदंगवादक। —लगभग १शती जिला जेल, मथुरा से प्राप्त।
३१	१२. २१२	कोट की बेलबूटीदार किनार, महाराज चष्टन की प्रतिमा के एक भाग का विशदीकरण। —१शती माँट से प्राप्त।
३२	वही	विविध अलंकरणों से शोभित पदकों से युक्त चष्टन का कमरबन्द।
३३	१२. २१५	सम्राट वेम का सिंहासन और ऊपरी आस्तरण—वेम की मूर्ति के एक भाग का विशदीकरण —१शती माँट से प्राप्त।
३४	१८. १४११	समृद्धि की देवी वसुधारा जिसके हाथ में छत्र तथा पास में पूर्ण-कुम्भ हैं (पृ. २५)। —लगभग प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध बाजना से प्राप्त।
३५	००. बी ६३	पार्श्वचरों से शोभित आसनस्थ तीर्थंकर। —लगभग प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध
३६	००. क्यू ३	खण्डित आयागपट्ट जिस पर एक गजयुक्त चैत्यस्तम्भ बना है। —लगभग प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध कंकाली टीले से प्राप्त।
३७	वही	पृष्ठभाग, जिस पर पूर्वकाल का एक लेख तथा बेल विद्यमान हैं; प्राचीन वस्तुओं के पुनरुपयोग का एक नमूना (पृ. ५८)।
३८	१४. ३९२-९५	विष्णु। इनके दाहिने कंधे से संकर्षण तथा मस्तक के पीछे से कोई अन्य देवता विनिसृत हो रहे हैं। इसी प्रकार के किसी देवता को बांयें कन्धे के पास भी मूलमूर्ति में अंकित किया गया था। —लगभग द्वितीय शताब्दी का प्रारम्भ सप्तसमुद्री कुएं से प्राप्त।
३९	वही	पृष्ठभाग, जिसमें शुक से युक्त कदम्ब वृक्ष बना है (पृ. २२)।
४०	३३. २३२९	कुबेर तथा शिशु के साथ हारीति (पृ. २५)। —लगभग द्वितीय शताब्दी कंकाली टीले से प्राप्त।
४१	००. बी ६९	जैन चौमुखी या सर्वतोभद्रिका प्रतिमा में तीर्थंकर ऋषभनाथ (पृ. १८)। —लगभग २री शती कंकाली टीले से प्राप्त।

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
४२	१४. ४८५	बोधिसत्त्व । —लगभग २री शती
४३	००. एफ ४२	गांधारकलाकृति कम्बोजिका की प्रतिमा का ऊपरी भाग (पृ. १५) । —लगभग २री शती सप्तर्षि टीला, मथुरा से प्राप्त ।
४४	वही	कम्बोजिका का केश विन्यास ।
४५	००. ए ४७	मोढ़े पर बैठे हुए बोधिसत्त्व प्रतिमा का निचला भाग ; गांधारकला से प्रभावित मथुरा की कलाकृति । —लगभग २री शती ।
४६	००. सी २	आसवपायी कुबेर व उनकी सेविकाएं, स्त्रियों की विदेशी वेशभूषा अवलोकनीय है (पृ. १४) । —लगभग २री शती पालीखेड़ा से प्राप्त ।
४७	वही	एक सेविका का विशदीकरण
४८	००. ए ६५	अभयमुद्रा में आसनस्थ बुद्ध; यहाँ परिधान किये हुए वस्त्रों पर गांधार प्रभाव स्पष्ट है । —शक संवत ५१ = सन् १२९ । गोवर्धन के निकट अन्योर नामक गांव से प्राप्त ।
४९	००. एच. १	बुद्ध का कुमार सिद्धार्थ के रूप में प्राकट्य (पृ. ४३) । —लगभग २री शती राजघाट, मथुरा ।
५०	१५. ५१४	पैबंदी चीवर (चीवर पांसकुल अथवा पाली-बंध व मर्यादा-बन्धों से युक्त चीवर) को धारण करनेवाले आसनस्थ बुद्ध । —लगभग २री शती महोली से प्राप्त ।
५१	वही	पृष्ठ भाग ।
५२	५९. ४७४०	बुद्ध द्वारा पंच भद्रवर्गीय भिक्षुओं के सामने धर्म-चक्र-प्रवर्तन (पृ. ४६)। —लगभग २री शती डीग दरवाजा, मथुरा से प्राप्त ।
५३	१३. २८६	वृक्ष के नीचे स्थित स्तन-प्रदर्शन करती हुई रमणी (पृ. ४५, पा. टि. २ ख) । —लगभग २री शती ईसापुर से प्राप्त ।
५४	१७. १३०७	बायें हाथ पर बैठे हुए शुक को खिलाती हुई रमणी (पृ. ४५, पा. टि. २ घ) ।

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
		—लगभग २री शती गिरधरपुर टीले से प्राप्त ।
५५	००. एफ २	वृक्ष पर गिलहरी, एक नागी प्रतिमा का पृष्ठ भाग (पृ. १३) । —लगभग २री शती
५६	५७.४४४६	एक विशाल द्वारस्तम्भ का निचला भाग जिस पर नमस्कार-मुद्रा में एक राजपुरुष बना है, बगल में पुष्प-चंगेरी लिये वामनक खड़ा है । —लगभग २री शती चौरासी टीले के सामने से प्राप्त ।
५७	वही	पार्श्ववर्ती अलंकरण—श्रीवत्स तथा गरुड़ ।
५८	१७. १३४४	श्रीकृष्ण को लेकर यमुना पार करते हुए वसुदेव (पृ. ५१) । —लगभग २री शती गायत्री टीला, मथुरा से प्राप्त ।
५९	००. ई २४	वनमाला पहने हुए वज्रधारी इन्द्र । —लगभग २-३री शती तारसी ग्राम से प्राप्त ।
६०	वही	पृष्ठ भाग ।
६१	१७. १३२५	बलराम । —लगभग २-३री शती गिरधरपुर से प्राप्त ।
६२	वही	पृष्ठ भाग ।
६३	५६. ४२००	गरुड़ारूढ़ विष्णु (पृ. १३) । —लगभग २-३री शती
६४	५८. ४४७६	केशी के साथ श्रीकृष्ण का युद्ध (पृ. ५२) । —लगभग २-३री शती भरतपुर दरवाजे से प्राप्त ।
६४	५८. ४४७४	एक विदेशी पूजक । —लगभग २-३री शती कटराकेशवदेव, मथुरा से प्राप्त ।
६६	३४. २४८८	कृष्ण बलराम के साथ तीर्थंकर नेमिनाथ (पृ. १९) । —लगभग २-३री शती

कुषाण-गुप्त अथवा संक्रमण कालीन (लगभग २०० ई.—३५० ई. तक) प्रतिमाएं

६७	००. सी १८	वृक्ष के नीचे भद्रपुरुष अथवा बोधिसत्त्व । —लगभग ३री शती

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
६८	३९. २८३१	अभयमुद्रा में स्थित बुद्ध प्रतिमा का ऊपरी भाग। —लगभग ३री शती
६९	००. सी ३०	कुबेर, लक्ष्मी व हारीति (पृ. २५)। —लगभग ३री शती मनोहरपुर टीला, मथुरा से प्राप्त।
७०	००. सी ३	आसनस्थ कुबेर, धनपति का संतोषपूर्ण मुख तथा आराम से बैठने का भाव दर्शनीय है। —लगभग ३री शती महोली-पालीखेड़ा सीमा से प्राप्त।
७१	६३. १	मुकुट पहने हुए किसी पुरुष मूर्ति का मस्तक। मुख पर झलकने वाला मन्दस्मित अवलोकनीय है। —लगभग ३री शती का उत्तरार्ध
७२	१५. ५१२	गदा, शंख और चक्र धारण करने वाले आसनस्थ विष्णु (पृ. ३२)। —लगभग चतुर्थ शती का प्रारम्भ
७३	३०. २०८५	शिवमूर्ति का मस्तक (पृ. ३२)। —लगभग चतुर्थ शताब्दी का प्रारम्भ
७४	५४. ३७६४	व्याघ्राम्बरधारी शिव की खण्डित प्रतिमा (पृ. ३२)। —लगभग ४थी शती
७५	१७. १३४३	शिलापट्ट जिस पर एक मिथुन, पत्रावली तथा त्रिरत्न से शोभित भवन बने हैं। —लगभग ४थी शती

गुप्तकालीन कलाकृतियां (लगभग चतुर्थ शताब्दी के मध्य से ६वीं शती तक)

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
७६	२९. १९३१	भिक्षापात्र (?) तथा दण्ड लिये हुये शिव अथवा लकुलीश, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के लेखांकित स्तम्भ का निचला भाग (पृ. ३२)। —गुप्त संवत् ६१ = ३८० ई. रंगेश्वर मथुरा से प्राप्त।
७७	४६. ३२२६	इन्द्र और उसका वाहन ऐरावत (पृ. ३२) —लगभग ४थी–५वीं शती
७८	१५. ५७८	अभयमुद्रा में स्थित बुद्ध प्रतिमा। —लगभग ४थी–५वीं शती कंकाली टीला, मथुरा से प्राप्त।

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
७९	००. ए ५	बुद्धमूर्ति का ऊपरी भाग व अलंकृत प्रभामण्डल । —५वीं शती जमालपुर टीला, मथुरा से प्राप्त ।
८०	१३. ३६२	फलक ८२ का दाहिना भाग—शिव ।
८१	वही	फलक ८२ का बाँया भाग—पार्वती ।
८२	वही	अर्धनारीश्वर प्रतिमा का मस्तक (पृ. ३२) । गुप्तकाल की एक सुन्दर कलाकृति । —५वीं शती कटराकेशवदेव के पास से प्राप्त ।
८३	३५. २५७७	शिवपार्वती से युक्त कैलास को उठाते हुये रावण (पृ. ५३) । —५वीं शती डीग दरवाजे से प्राप्त ।
८४	१३. २८३	विष्णु-मूर्ति का मस्तक । —५वीं शती
८५	४४. ३११८	वास्तुखण्ड जिस पर महापरिनिर्वाण का दृश्य तथा वृष, भारवाही यक्ष, आदि अलंकरण बने हुये हैं । —लगभग ५वीं—६वीं शती स्वामीघाट से प्राप्त ।
८६	४४. ३११९	उसी प्रकार का शिलाखण्ड जिस पर मारविजय का दृश्य बना है ।
८७	४५. ३२११	शिष्यों के साथ आसनस्थ लकुलीश । —लगभग ५वीं—६वीं शती
८८	४२-४३. २९८९	विश्वरूप में स्थित वराह-नृसिंह विष्णु (पृ. ३२) । —लगभग ६ठी शती

गुप्तोत्तरकाल (लगभग ६०० ई. से १३०० ई. स.)

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
८९	४७. ३३७४	कालियदमन (पृ. ५२) । —लगभग ७वीं शती कंसकिला, मथुरा से प्राप्त ।
९०	००. डी ४७	गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण (पृ. ५२) । —लगभग ७वीं शती गतश्रमनारायण मन्दिर, मथुरा से प्राप्त ।
९१	३८. २८३६	तर्पण-मुद्रा में दैत्यग्रह राहू । —लगभग ९वीं शती

क्रम संख्या	पंजिका संख्या	संक्षिप्त विवरण, तिथि तथा प्राप्ति स्थान
९२	००. डी २४	अग्नि की मूर्ति, यहां अग्नि के वाहन मेष को पुरुषाकार रूप में दिखलाया गया है। —लगभग ९वीं शती राधाकुण्ड और गोवर्धन के बीच नारदकुण्ड से प्राप्त।
९३	००. डी ६	जैनदेवी चक्रेश्वरी, जिसके सभी हाथों में चक्र हैं (पृ. ३४)। —लगभग ९वीं—१०वीं शती कंकाली टीला, मथुरा से प्राप्त।
९४	००. डी ३७	पद्मासन में विष्णु (पृ. ३४)। —लगभग ११वीं शती गतश्रमनारायण मन्दिर, मथुरा से प्राप्त।
९५	४५. ३२१०	नाग-संभवतः बलराम। —लगभग ११वीं शती स्वामीघाट, मथुरा से प्राप्त।
९६	१६. १२०५	मकरारूढ़ देवी गंगा। —लगभग ११वीं—१२हवीं शती
९७	६०. ४८४३	जैन देवता क्षेत्रपाल (पृ. ३४)। —लगभग १२हवीं—१३वीं शती
९८	००. डी ७	जैन देवी अम्बिका (पृ. ३४)। ऊपरी भाग पर कृष्ण बलराम के साथ तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा है, जिनकी एक शासन देवता अम्बिका है। —लगभग १२हवीं—१३वीं शती
९९	४०. २८८८	कुषाणकालीन शालभंजिका की मूर्ति जिसका वैष्णव देवी के रूप में पुनः उपयोग किया गया था।
१००	१७. १३४८	कुषाणकालीन बोधिसत्त्व की मूर्ति जिसे बाद में वैष्णव प्रतिमा बना दिया गया है (पृ. ५९)।
१०१	६५.१४	कुषाणकालीन वराह प्रतिमा (परिशिष्ट २)। —लगभग २री शती
चित्रावली प्रारम्भ		आसवघटधारिणी रमणी
सम्मुख आवरण		रंगीन चित्र।
पृष्ठ आवरण		सद्यःस्नाता और मुक्तालोभी हंस।

चित्रावली

रमणी

१. मानवरूप में नागदेवता

२ मुखबिम्ब से युक्त सूचिका

३. रमणी और उसकी आकर्षक केशरचना

४. भारवाही यक्ष

५. चामरधर

६. यक्ष

७. व्यालयक्ष
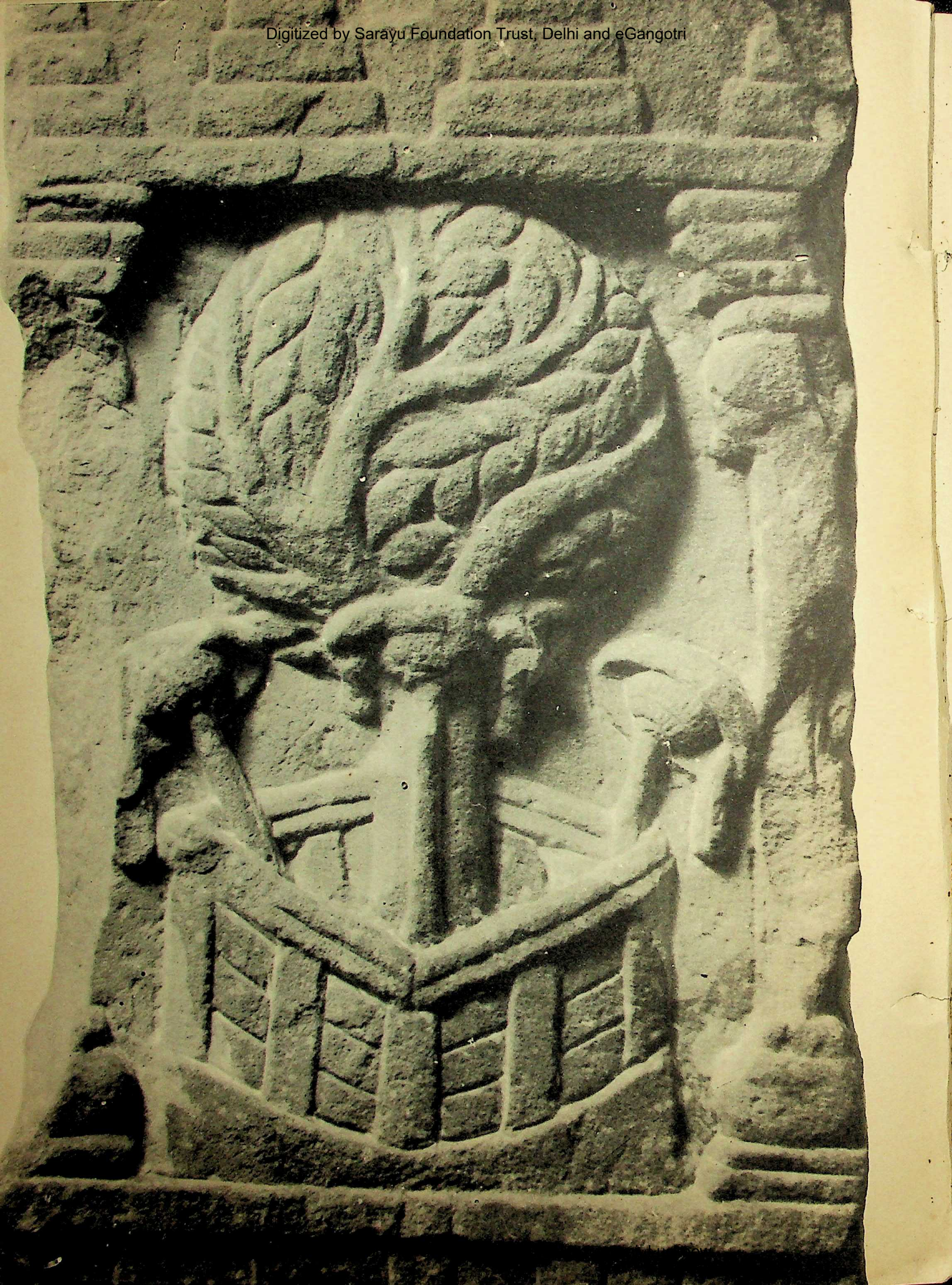
९. धर्मचक्र

← ८. बोधिवृक्ष

१० शिवलिंग का पूजन

११.- काल्पनिक पशु, फलक १० का पृष्ठभाग

१२. स्तूप-पूजन

१३ दुःखोपादान जातक

१४. वीणावादिनी

१५. महासुतसोम जातक

१७ उपासक

१६. पादकुसलमाणव जातक

१८. राजपुरुष

१९. फलक १८ का पृष्ठभाग

२०. शंकुकर्णयक्ष

२१. उष्णीशधारी पुरुष

२२. उलूक जातक

२३. कच्छप जातक

२४ रोमक जातक

२५. आयागपट्ट

२६. स्तूपांकित आयागपट्ट

२७ बुद्ध का एक प्रतीक-प्रभामण्डल
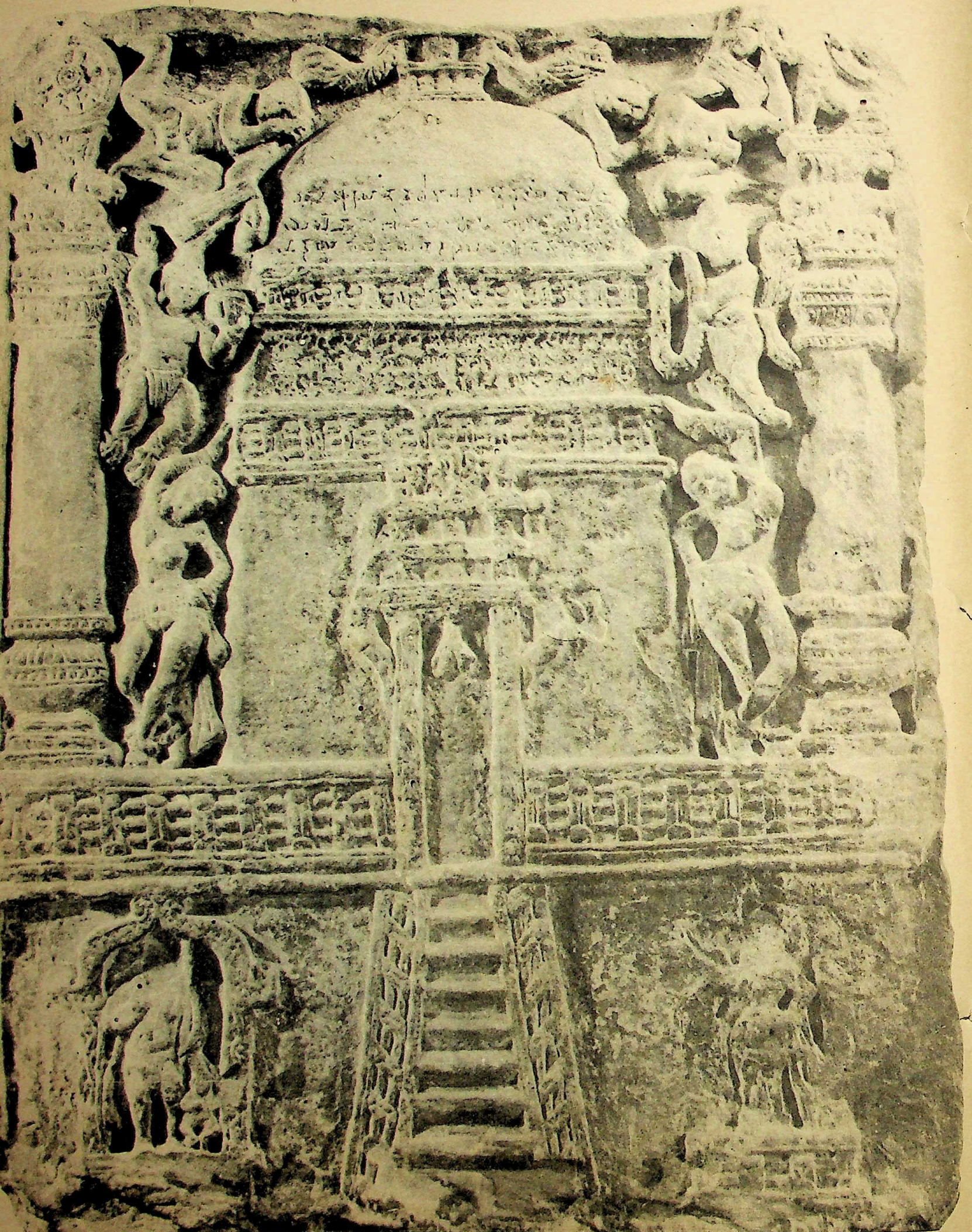
२८. बुद्ध का स्वर्ग से अवतरण

२९. पूर्णकुंभ और श्रीपर्णीलता

३०. मृदगवादक

३१. कुषाणकालीन जरी के बेलबूटे
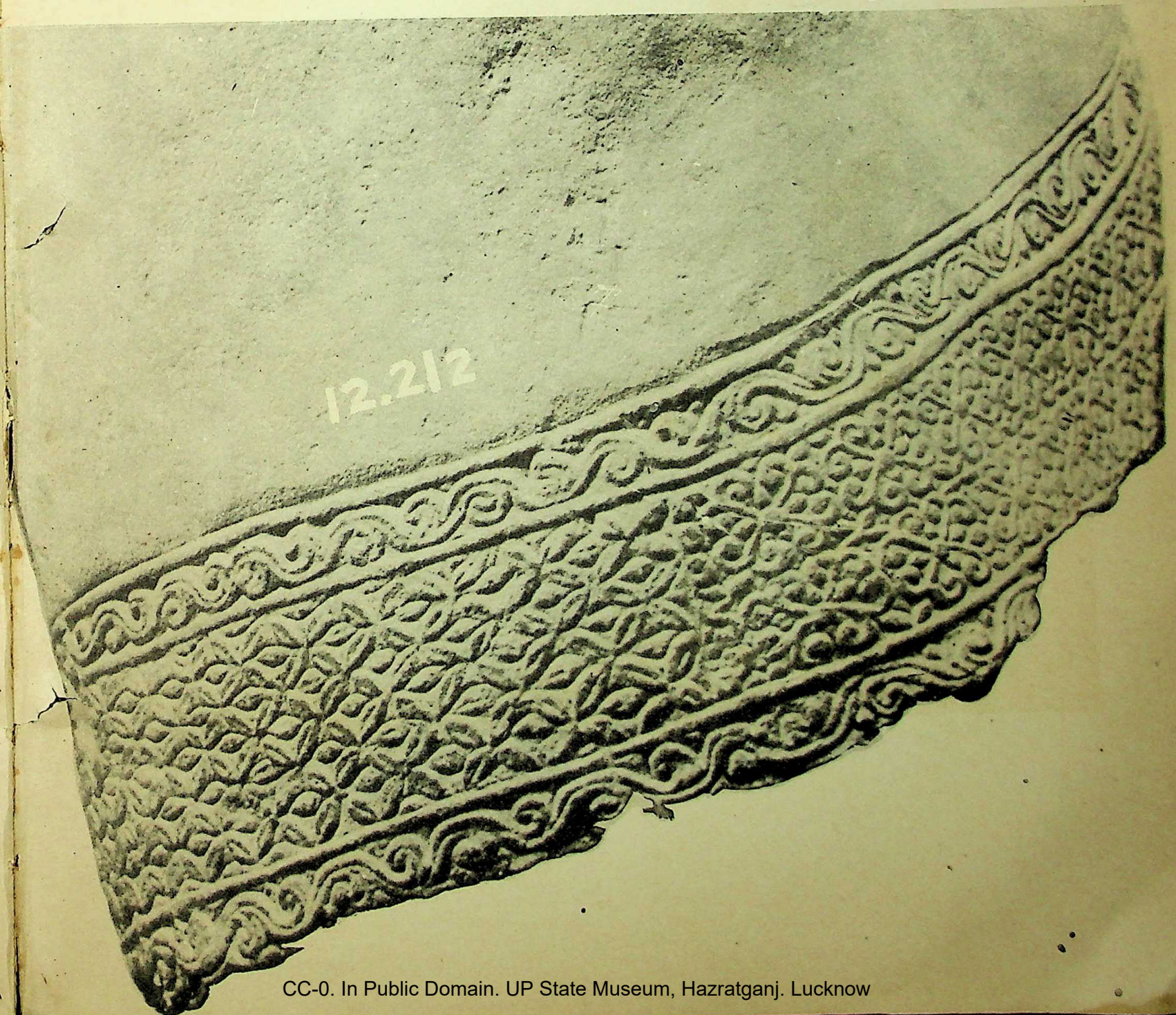
३२. राजा का कमरबन्द

३३. सिंहासन

३४. देवी वसुंधरा

३५. तीर्थंकर

३६. गजस्तंभ से शोभित आयागपट्ट

३७. फलक ३६ का लेखांकित पृष्ठभाग

३८. विष्णु—एक कंधे पर संकर्षण

३९. फलक ३८ का पृष्ठभाग

४०. कुबेरहारिति
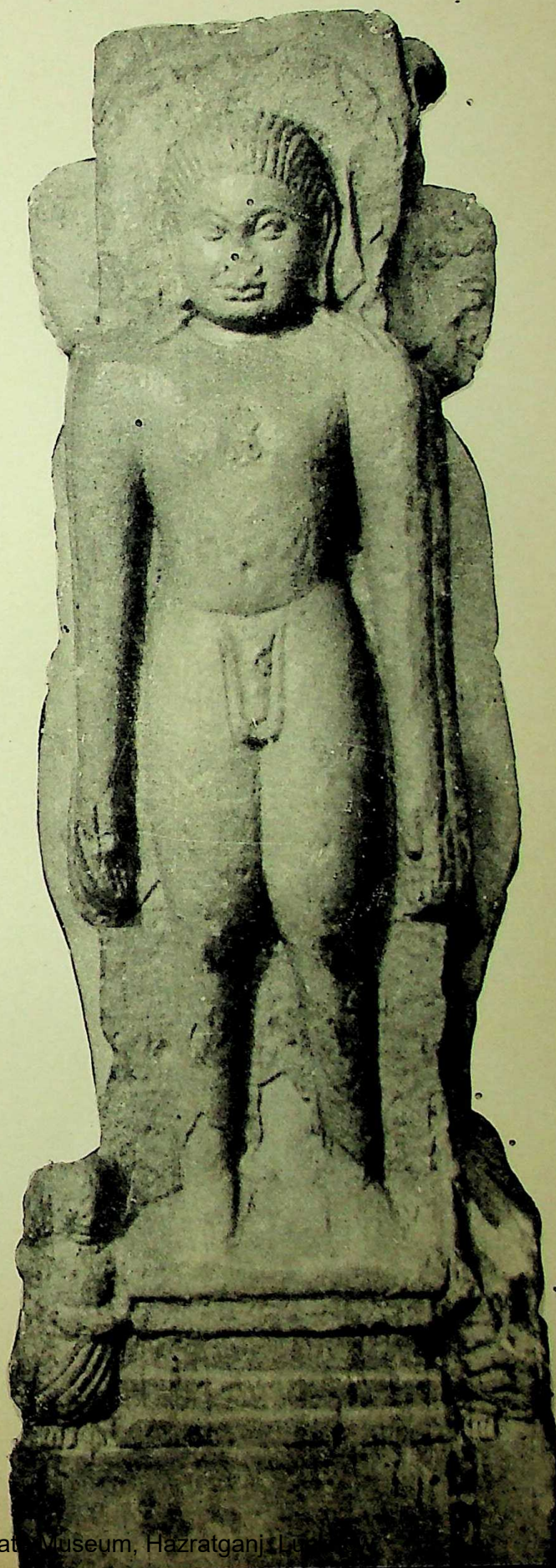
४१. सर्वतोभद्र-प्रतिमा

४२. बोधिसत्त्व

४३. राज-महिषि—गांधारकला की कृति

४४. फलक ४३ का पृष्ठभाग
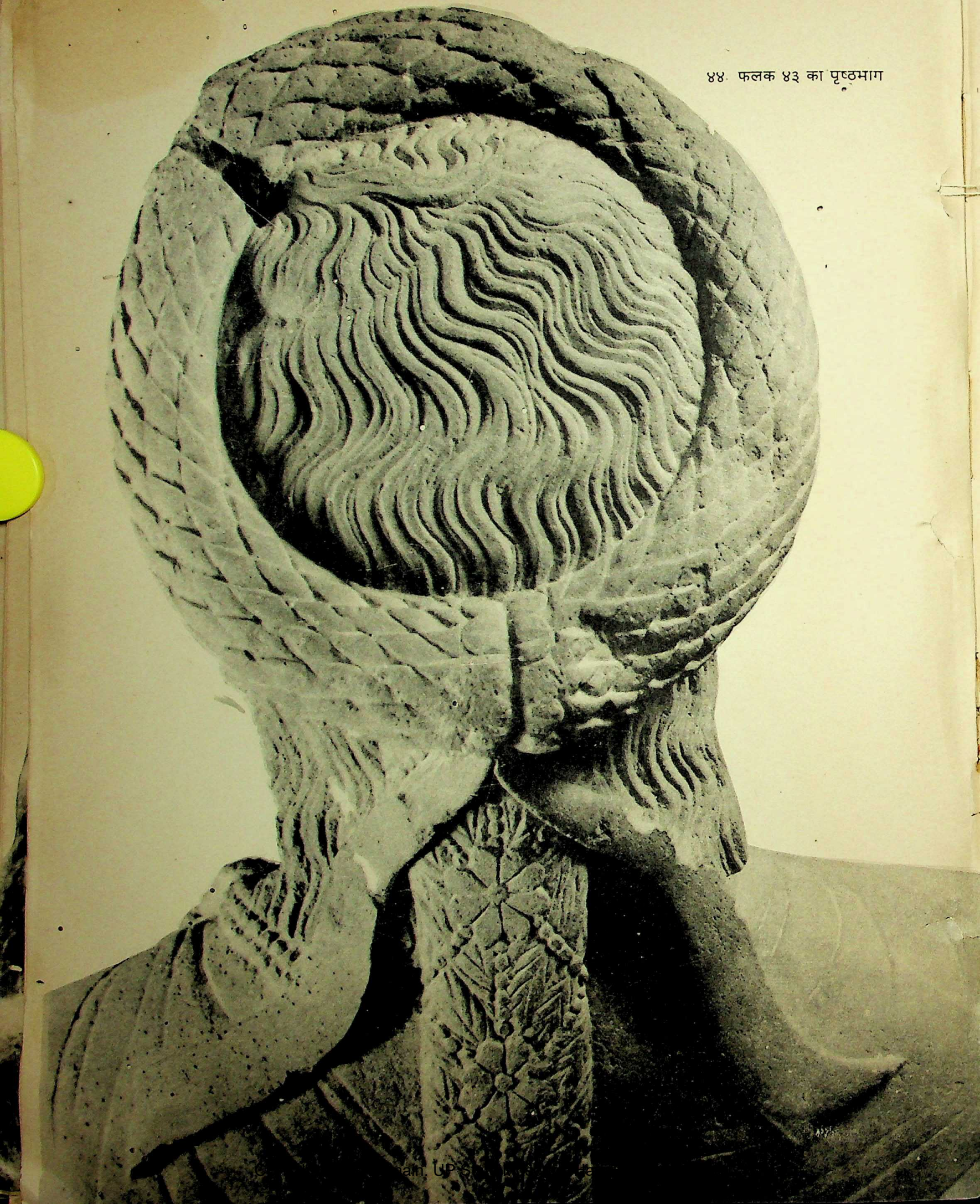
४५. मोढ़े पर बैठे हुए बोधिसत्त्व

४६. आसवपायी कुबेर

४७. कुबेर की एक दासी

४८. गांधार शैली से प्रभावित बुद्ध प्रतिमा

४९. बुद्ध का प्राकट्य

५० चीवरधारी बुद्ध

५१. फलक ५० का पृष्ठ भाग

५२. धर्मचक्र-प्रवर्तन

५३ स्तन प्रदर्शन

५४. शुकक्रीड़ा

५५. गिलहरी
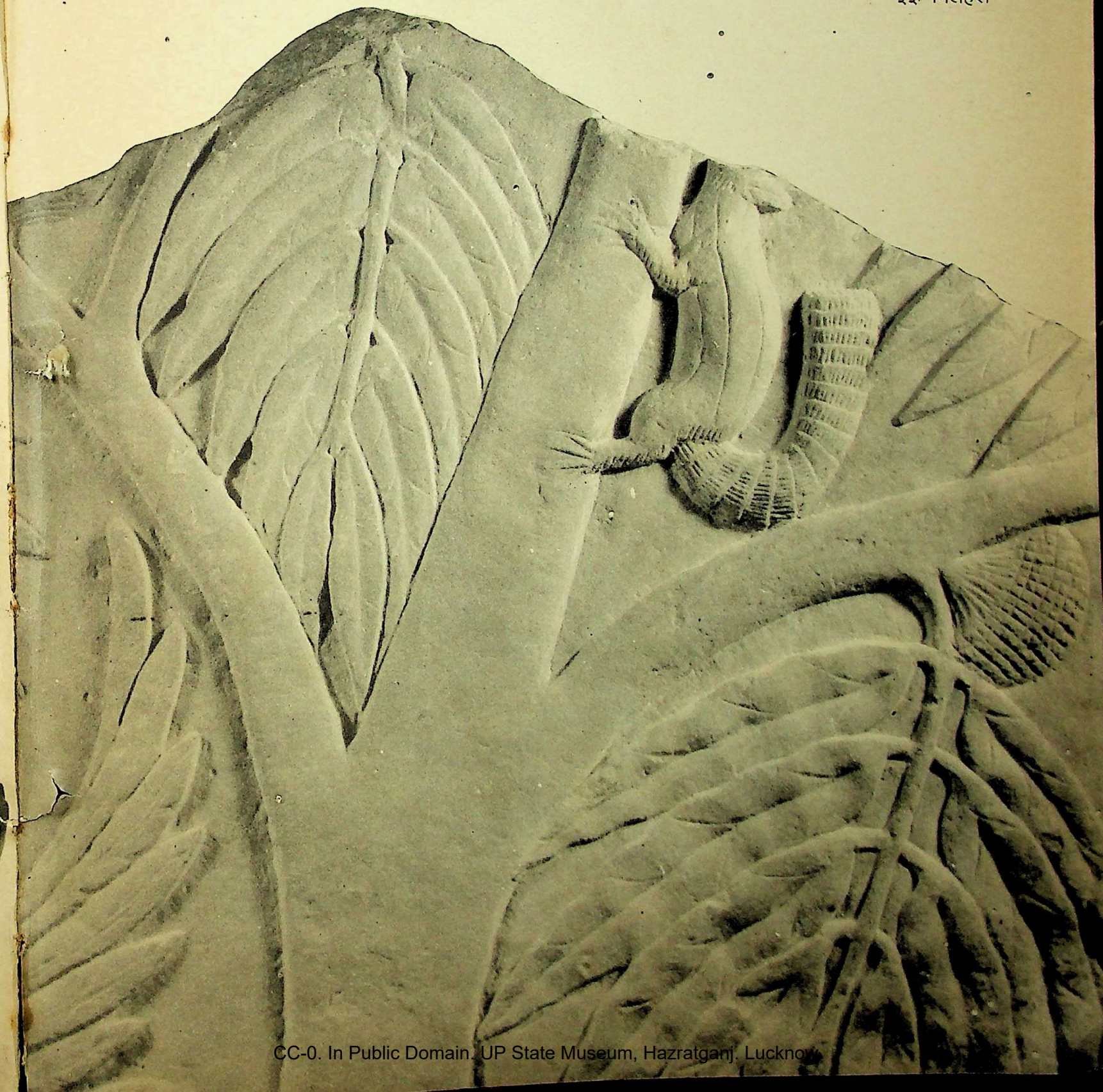
५६ नमस्कार मुद्रा में राजपुरुष

५७ गरुड़ तथा श्रीवत्स

५८ यमुना पार करते हुए वसुदेव

५९ वज्रधर इन्द्र

६० फलक ५९ का पिछला भाग

६१ बलराम

६२ फलक ६१ का पृष्ठ भाग

६३ गरुड़ारूढ़ विष्णु

६४. केशी का कृष्ण के साथ युद्ध

६५. एक विदेशी

६६. तीर्थंकर नेमिनाथ
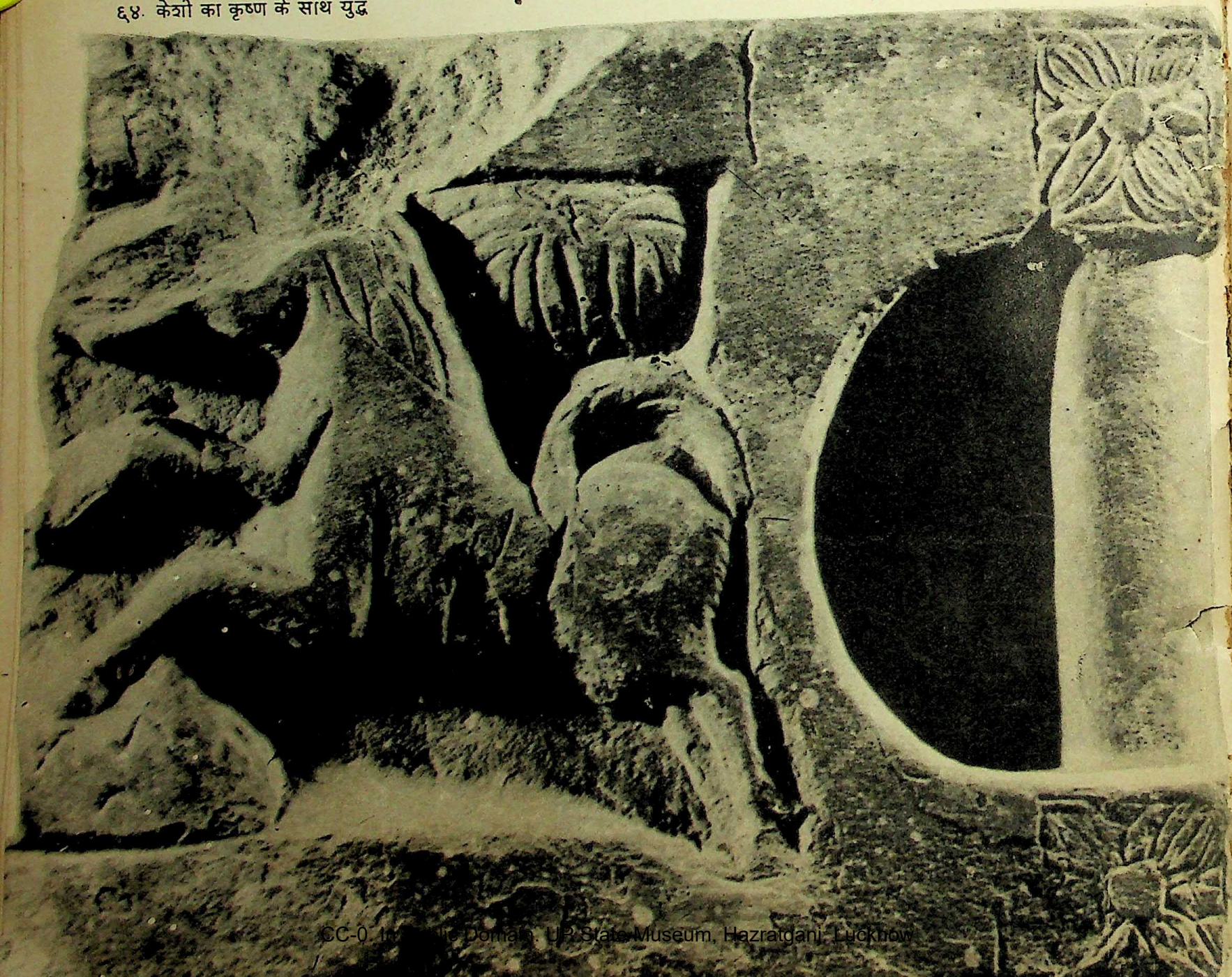
६७. बोधिसत्व (?)

६८. अभयमुद्रा में बुद्ध

६९. कुबेर, लक्ष्मी और हारीति

७० आसनस्थ कुबेर

७१ मुकुटधारी भद्र पुरुष

७२. आसनस्थ विष्णु

७३. शिव-मूर्ति का मस्तक

७४. व्याघ्राम्बरधारी शिव

७५. अलंकृत शिलापट्ट

७६. दंडधर शिव

७७. ऐरावत के साथ इन्द्र

७८. बुद्ध
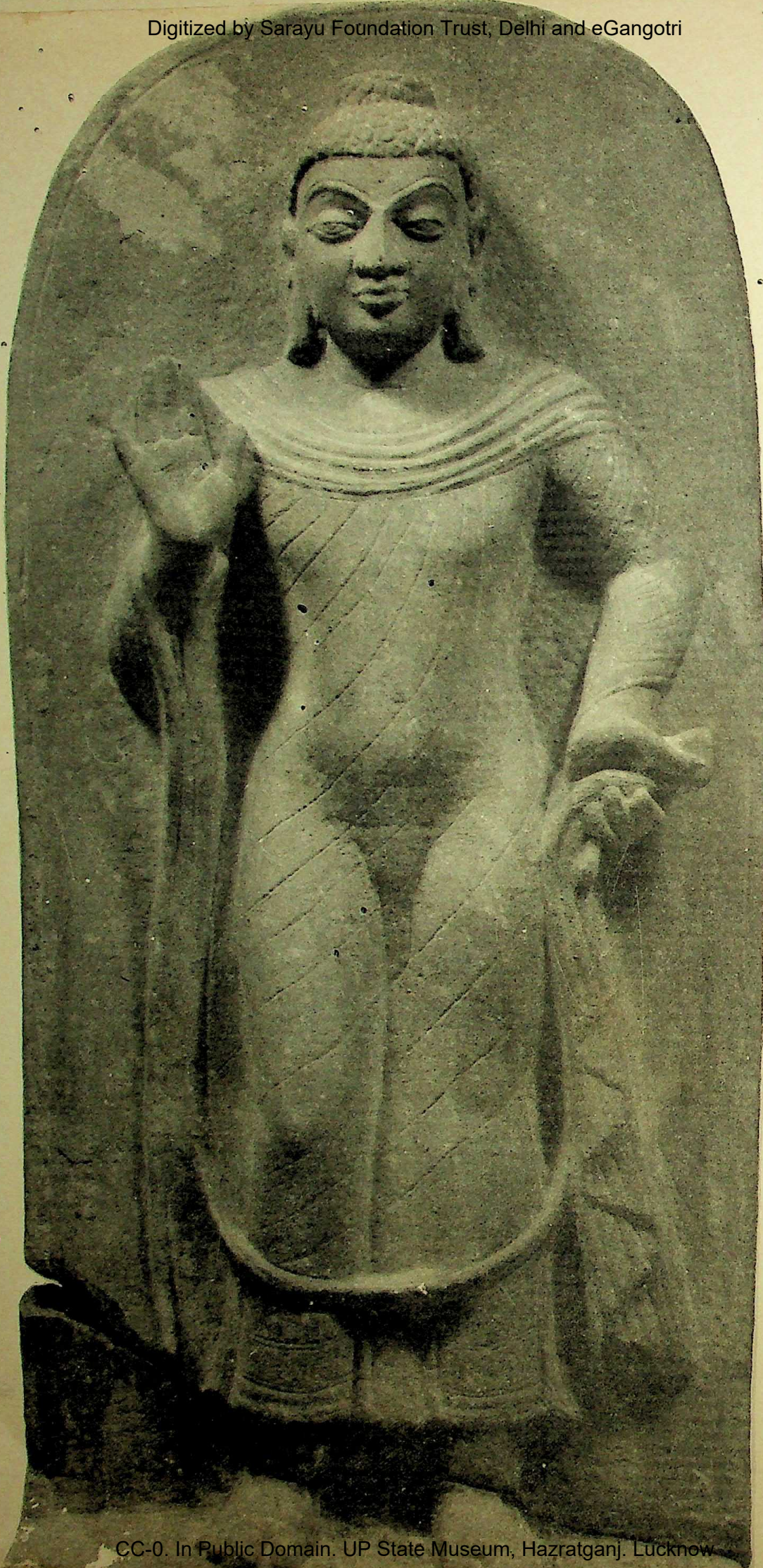
७९. बुद्ध और उनका प्रभामंडल

८०. दाहिनी ओर शिव—फलक ८२

८१. बॅायीं ओर पार्वती—फलक ८२

८२. अर्धनारीश्वर

८३. कैलाश को उठाते हुए रावण
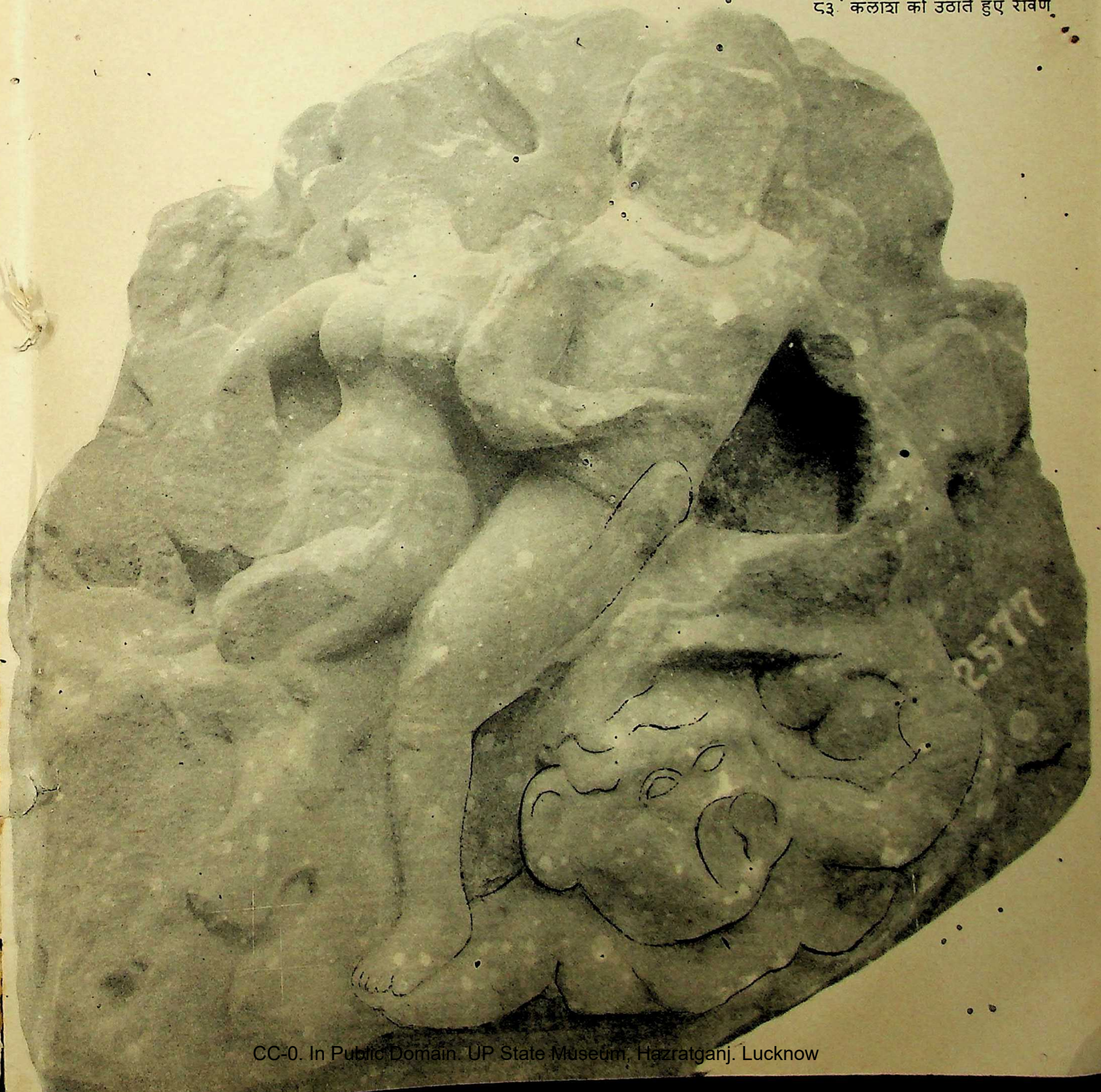
८४ विष्णुमूर्ति का मस्तक

८५. शिलाखंड-महापरिनिर्वाण
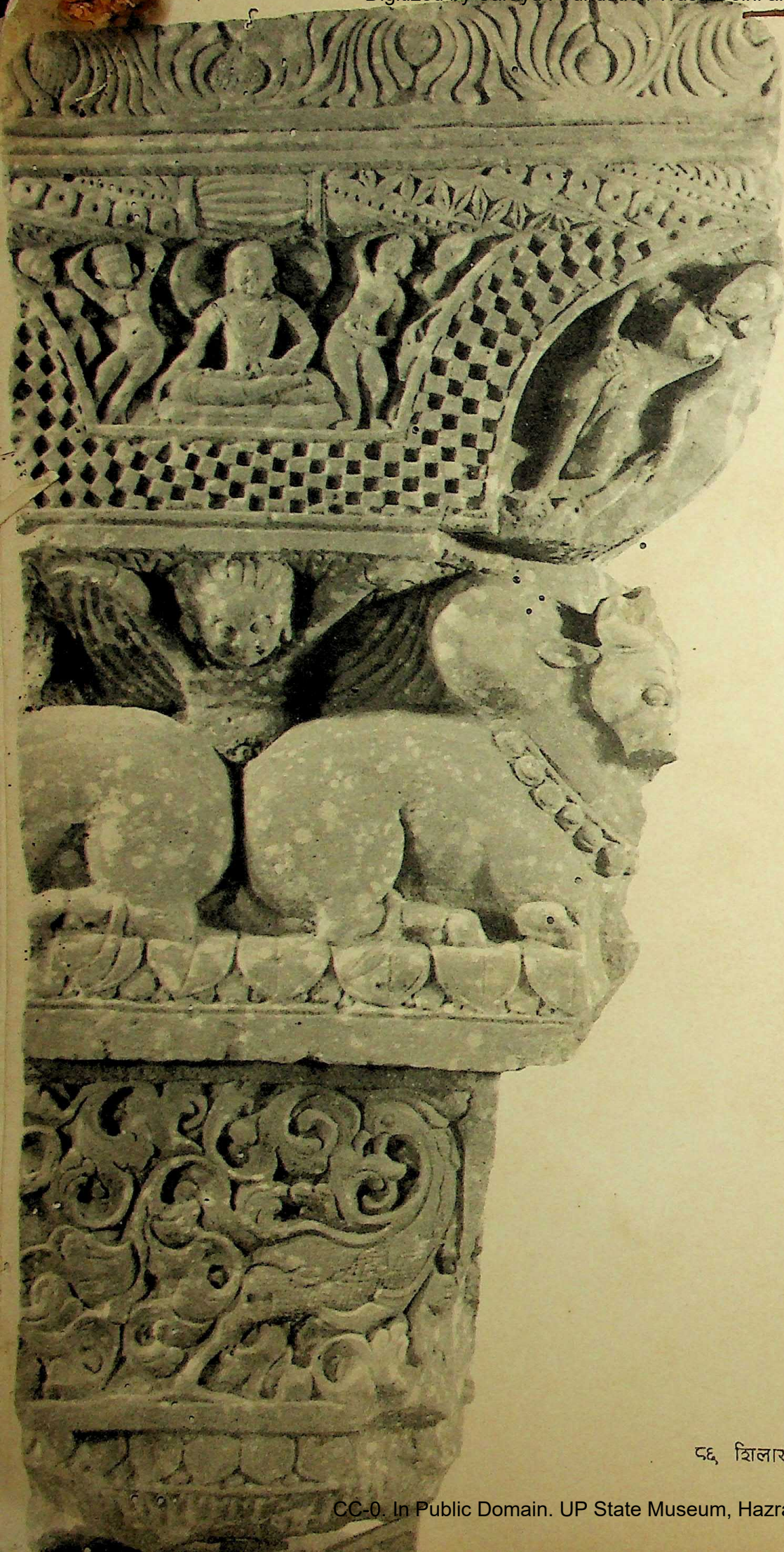
८६. शिलाखंड--मारविजय

८७. लकुलीश

८८ वराह-नृसिंह विष्णु

— ९० गोवर्धनधारी कृष्ण

९१. दैत्यग्रह राहु

← ९२ अग्नि
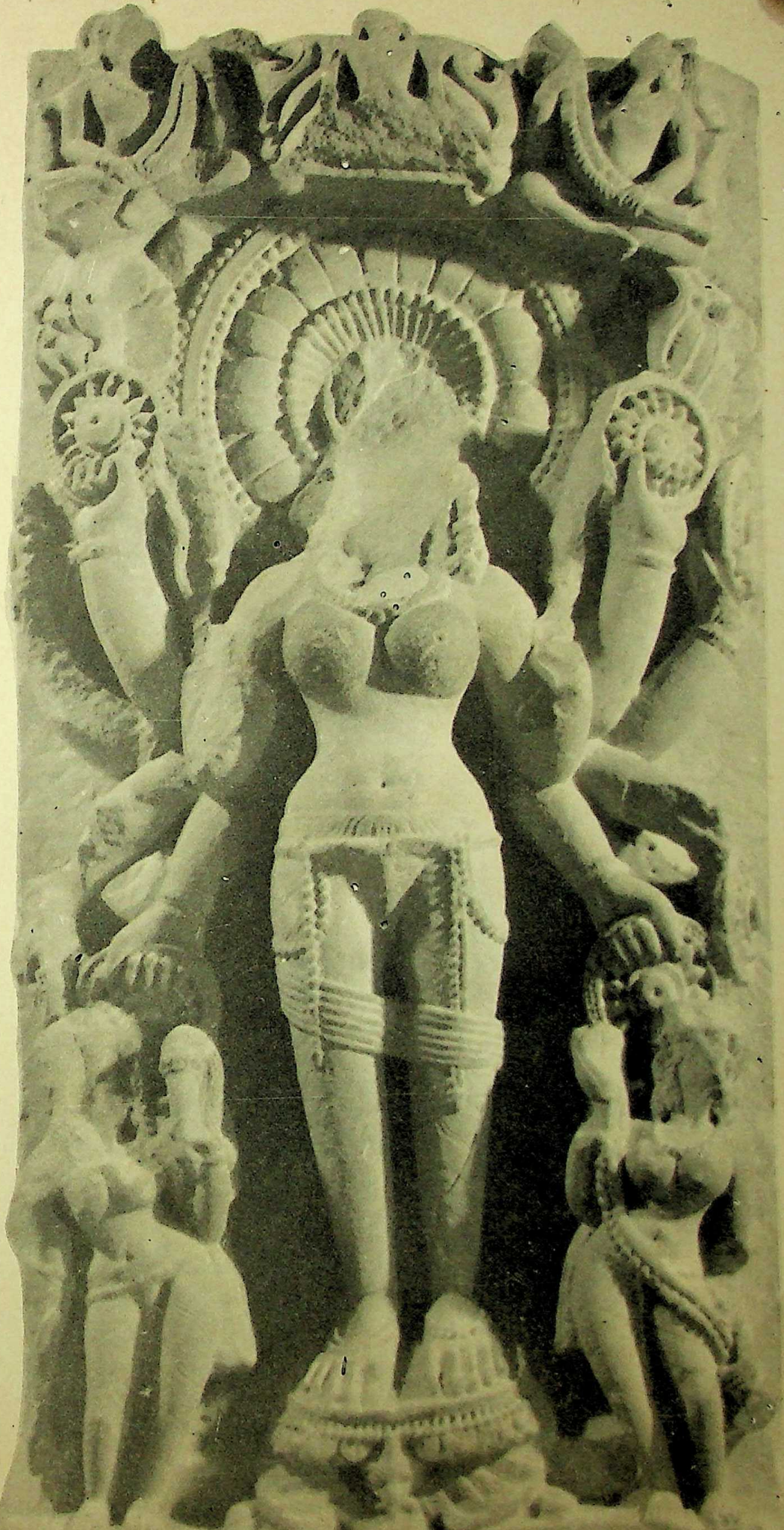
९३ चक्रेश्वरी

६४. पद्मासन में विष्णु

६५. नाग, बलराम ?

९६. गंगा
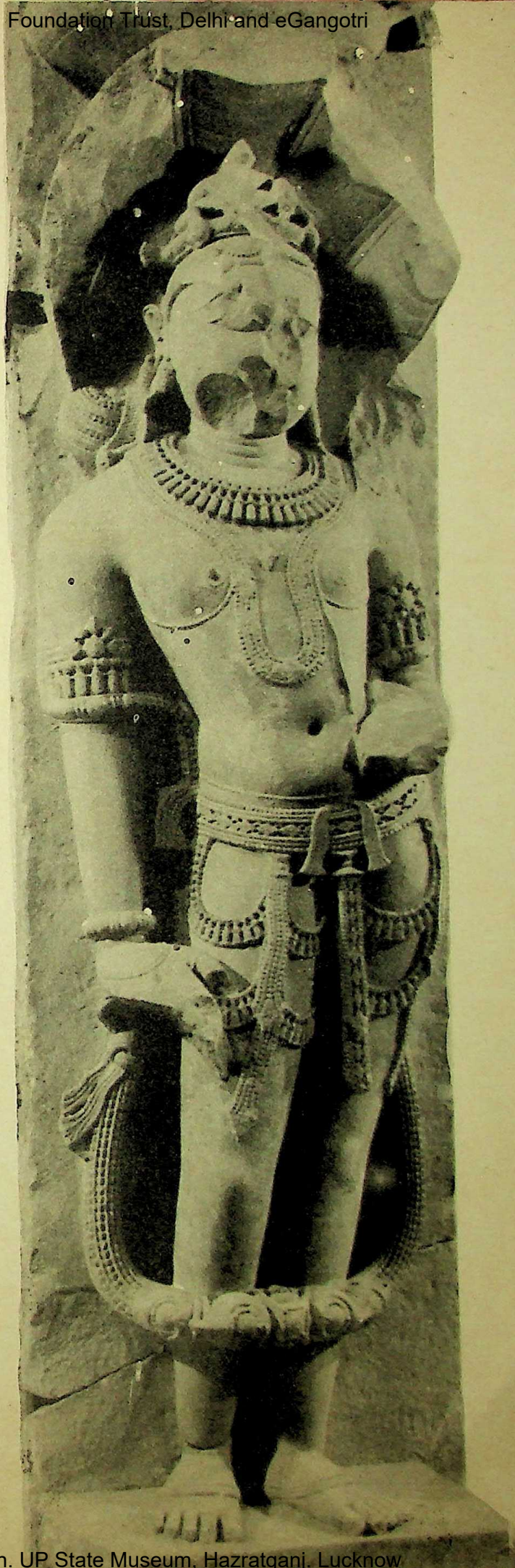
१७. क्षेत्रपाल

९८ अम्बिका

९९ वैष्णव देवी के रूप में शालभंजिका

१००. वैष्णव के रूप में बोधिसत्व

१०१. बराह

परिशिष्ट–२

मथुरा संग्रहालय की नवीन उपलब्धि कुषाणकालीन-वराह प्रतिमा

विष्णु के अवतारों की संख्या में यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में मतैक्य नहीं है, उनकी संख्या सात से चौबीस तक गिनाई गई है, तथापि वराह को एक प्रमुख अवतार मानने में सभी सहमत हैं।[1] रामायण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, आदि में तो अवतारों की गणना वराह से ही प्रारंभ की गई है, परन्तु यह आश्चर्य का विषय है कि इन अवतारों की चर्चा प्राचीन साहित्य में बहुलता से होते हुए भी मूर्तिकला में इनके दर्शन अति प्राचीन काल में नहीं होते। उदाहरणार्थ राम और राम-कथा का अंकन अब तक प्राक् गुप्तकाल की कला में कहीं नहीं दिखलाई पड़ा। कृष्ण के दर्शन कुषाण काल की इनी-गिनी कलाकृतियों में होते हैं।[2] (बलराम जिसकी भी कई स्थानों पर अवतारों में गणना की गई है) की प्रतिमा अवश्य ही शुंग काल से मिलने लगती है।[3] इन अवतारों के अतिरिक्त अर्थात् बलराम व कृष्ण के अतिरिक्त किसी भी अवतार के दर्शन गुप्तकाल की पूर्व की कलाकृतियों में नहीं हुए हैं।

---

१ वाल्मीकीय रामायण, युद्ध, ११७. १२-३१
महाभारत, शान्ति, ३३९. १०३-४
मत्स्य पुराण, ४७. २३४-५०
अग्नि पुराण, ४९. १-९
वायु पुराण, ९८. ७१-११७
ब्रह्म पुराण, १८०. १८-४२; २१३. १-४३; ७६-१६८
पद्म पुराण, खण्ड पांच, अध्याय–२३०, ३१, ३२, ३७, ३८, ३९, ४०, २४१, ४२, ४३, ४४, ४५-२५२
स्कन्द पुराण, पुरुषोत्तम क्षेत्र महात्म्य, ५८.१०
स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड–वासुदेव महात्म्य
विष्णुधर्मोत्तर पुराण तीन–८५
भागवत, एक–३. ६–,२२, दो–७–१, ग्यारह–४. १७–२३,
विष्णु पुराण, तीन–१,३६–४४, तीन–३. ५७–५८,
वही, पांच–१७.१०, ३३
अभिलषितार्थ चिन्तामणि, तीन–१, पृष्ठ २५९–६१
वृद्ध हारित स्मृति, ७. १४२–४३

२ मथुरा मूर्ति संख्या १७. १३४४, ५८. ४४७६
यू. पी. शाह, टैराकोटाज फ्राम, बीकानेर स्टेट, ललित कला, नं. ८, अक्टूबर, १९६०, पृष्ठ–५५-६२, फलक–२१, संख्या १ और २

३ लखनऊ मूर्ति संख्या, जी–२१५

वराह का पूजन गुप्तकाल में अधिक लोकप्रिय हुआ। उदयगिरि (मध्य प्रदेश) की विशाल वराह प्रतिमा, हूण शासक तोरमाण के समय की एरण से मिली हुई लेखांकित वराह मूर्ति[१] तथा इस काल की कई अन्य प्रतिमाएं इस बात की साक्षी देती हैं। गुप्तकाल के कई शिलालेखों में गणेश को नहीं अपितु वराह को ही नमस्कार किया गया है। यह तो स्पष्ट है कि वराह-पूजन की इतनी लोकप्रियता एक या दो शताब्दियों की देन नहीं हो सकती। इसके पीछे किसी परंपरा का होना अनिवार्य है। अब तक इस परंपरा के कोई स्पष्ट प्रमाण हमें नहीं मिले थे, केवल साहित्य के आधार पर ही उसका अध्याहार करना पड़ता था। सौभाग्य से इस वर्ष उक्त परंपरा के अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल गया।

यह प्रमाण पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा की एक नवीन उपलब्धि है। यह मूर्ति (मूर्ति संख्या ६५.१५, आकार १′२$\frac{1}{2}$″×१′४″) हवा-पानी से खराब भूरे रंग के बलुए पत्थर की है। मूर्ति विक्रेता के कथनानुसार यह मथुरा के निकट ही यमुना नदी से मिली थी, पर ऐसे कथनों का अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। वस्तुतः यह किसी बड़े शिलापट्ट का एक छोर है, जिस पर इस समय चार मानवकृतियां विद्यमान हैं। ठीक बायें सिरे पर बनी आकृति स्पष्टतया उपासक की ही है जो नमस्कार मुद्रा में खड़ा है। इसके मस्तक के ऊपर वाले भाग में एक पर्वत खण्ड दिखलाई पड़ता है। उपासक के पास आलीढ़ मुद्रा में खड़ी एक मस्तकविहीन चतुर्भुज मूर्ति है। उसके दोनों साधारण हाथ तो कमर पर रखे अर्थात् "कट्यवलम्बी" हैं। शेष दोनों हाथ ऊपर की ओर उठे हैं। हाथों में एक-एक चक्र है जिस पर दो घोड़ों के रथ में बैठे हुए सूर्य की आकृति बनी है। मूर्ति का मुख बायीं ओर घूमा हुआ है। यद्यपि मुख तो अब खण्डित है, तथापि उसके पास ही एक छोटी-सी स्त्री मूर्ति बनी है जिसके एक हाथ में कमल की कली के समान कोई वस्तु विद्यमान है। चतुर्भुज मूर्ति के गले में छोटी-सी पुष्प-माला है तथा वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न भी बना है। कमर में फेंट (कायबन्धन) लगी है तथा पहिनी हुई धोती के छोर पैरों के बीच में लटक रहे हैं। मूर्ति के हाथों में अंगद और कंकण पड़े हुए हैं। मुख के खण्डित होते हुए भी मस्तक का डौल, चार हाथ, कंठ की पुष्पमाला, छाती पर श्रीवत्स, मुख के पास बनी हुई नन्हीं-सी मूर्ति व कट्यवलम्बी हाथों के बल पर प्रस्तुत मूर्ति को निश्चय के साथ 'वराह' मूर्ति के रूप में पहिचाना जा सकता है।

वराह के बगल में दो और मूर्तियां हैं। एक मूर्ति, जिसका कोट जैसा चोगा गले में गांठ देकर बांधा गया है, हाथ में धनुष्य बाण लिये हुए वृक्ष के नीचे स्थित पुरुष की है। कदाचित् यह कोई सैनिक है। दूसरी प्रतिमा अधलेटे राजपुरुष की है जो अब अधूरी ही बची है। शिलापट्ट के एकदम दाहिने सिरे पर एक बड़ी-सी मानव मूर्ति का पैर बचा है। स्पष्ट है कि ये सारे विषय बगल वाले किसी दृश्य से सम्बन्धित हैं जो अब विनष्ट हो चुका है और कभी वराह के दाहिनी ओर बना था।

शिलापट्ट की निचली चौखट पर एक लेख अंकित था जिसका केवल एक खण्ड ही अब अवशिष्ट है। यह लेख ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी में प्रचलित ब्राह्मी लिपि में खुदा हुआ है। लेख का विद्यमान भाग इस रूप में पढ़ा जा सकता है :

टा सामिक प्रतिस्थापित—कटि प्रीयतं भगवां।

यद्यपि लेख के अक्षरों से कोई क्रमबद्ध अर्थ नहीं निकल पाता तथापि प्रस्तुत मूर्ति के निर्माण काल का निश्चय करने में यह हमारी विशेष सहायता करता है।

[१] के. डी. बाजपेई, सागर थ्रू दी एजेस्, पृष्ठ—३६, फलक ४

मूर्ति शास्त्र तथा कला की दृष्टि से प्रस्तुत वराह प्रतिमा निम्नांकित बातों के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है।

(१) श्रीवत्स चिह्न के दर्शन—भगवान विष्णु का यह एक प्रमुख चिह्न होते हुए भी मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन विष्णु मूर्ति में यह नहीं दिखलाई पड़ता। यद्यपि इसी काल की जैन तीर्थंकर की मूर्तियों के वक्षस्थल पर अनिवार्यतः इसके दर्शन होते हैं। कुषाण काल की बुद्ध और बोधिसत्त्व प्रतिमाओं के हाथ और पैर की उंगलियों के ऊपरी पौर पर यह चिह्न दिखलाई पड़ता है।[१] महापुरुषों का एक प्रमुख लक्षण होने के साथ ही आठ प्रमुख मंगल-चिह्नों में भी इसकी गिनती होती थी। कदाचित् इसी कारण से यह कुषाण काल के अलंकरणों में मुख्य अभिप्राय के रूप में पाया जाता है। प्रस्तुत मूर्ति में भी यह मिलता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुषाण काल में विष्णु मूर्ति से कदाचित् नहीं, पर वराह मूर्ति से इसका सम्बन्ध अवश्य था।

(२) मुख के पास वाली नन्हीं-सी स्त्री मूर्ति—स्पष्टतया यह पृथ्वी है जिसका वराह ने उद्धार किया था। पशु रूप में हो या मानव रूप में हो, वराह की मूर्तियों में इसका अंकन अनिवार्य है। पुराणों के अनुसार समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी को महावराह ने अपने दांतों पर उठा लिया था।[२] कहीं-कहीं पर पृथ्वी का बाईं कोहनी पर भी स्थित होने का उल्लेख मिलता है।[३] हमारी मूर्ति में मानव रूपिणी पृथ्वी बाईं ओर दिखलाई पड़ती है जो कदाचित् दांतों से सहारा पा रही है, उसके दाहिने हाथ में कली के समान कोई वस्तु है। एक उत्तरकालीन ग्रंथ 'अभिलाषितार्थ चिंतामणि' या 'मानसोल्लास' के मूर्ति-शास्त्र से सम्बन्धित अध्याय में इस प्रकार की पृथ्वी को नीलोत्पल लिये हुए बतलाया गया है।[४]

(३) दो सूर्य मूर्तियां—सूर्य मूर्ति से अंकित दो चक्रों का होना कुछ असामान्य-सा है। यहां सूर्य की उपस्थिति किस कारण से है, यह बतलाना कुछ कठिन है। सूर्य काल का प्रतीक है और कुछ पुराणों में काल को वराह से निम्नांकित रूप में जोड़ा गया है। मत्स्य पुराण में वराह को दिन और रात को धारण करने वाला (अहोरात्रेक्षणधरः)[५] तथा पद्मपुराण में उसे काल रूप (काल-काष्ठा निमेषादि काल रूपाय)[६] कहा गया है।

दो घोड़ों वाले रथ में बैठा हुआ सूर्य कुषाण काल की एक अपनी वस्तु थी। इस संदर्भ में मथुरा संग्रहालय की ईरानी वेश पहने हुए दो घोड़ों के बीच बैठी हुई प्रथम शताब्दी की सूर्य प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[७] इस काल में इस प्रकार की प्रतिमा अलंकरण का एक अभिप्राय भी बन गई थी। मथुरा प्राप्त एक स्त्री मूर्ति के मस्तक पर बालों से बंधे हुए पदक को इसी अभिप्राय से अंकित किया गया है। इस समय यह मूर्ति लखनऊ के राज्य संग्रहालय में है।[८]

(४) फूलों की माला—आपादलम्बिनी वनमाला का सम्बन्ध विष्णु से घनिष्ट है। गुप्त

१ एन. पी. जोशी, मथुरा कला में मांगलिक चिह्नों का प्रयोग, आज, वाराणसी, फरवरी १६, १९६४।
२ **पद्म पुराण**, छह, ३,७–११८
३ **देवतामूर्ति प्रकरणम्** पांच–७२
४ **मानसोल्लास,** विंशति ३, अध्याय–१. ७०१
५ **मत्स्य पुराण**, मोर प्रति, २४७. ६८
६ **पद्म पुराण,** मोर प्रति, पांच–२३७–२१
७ मथुरा मूर्ति संख्या १२. २६९
८ लखनऊ मूर्ति संख्या ४६. ८०

और गुप्तोत्तर काल की मूर्तियों में हमें यह लम्बी वनमाला दिखलाई पड़ती है, पर मथुरा की कुषाणकालीन मूर्तियों में इसका छोटा रूप देखा जा सकता है।[१] वनमाला के इस प्रारम्भिक रूप में केवल फूल ही नहीं अपितु कभी-कभी पत्तियां भी लगी रहती हैं।[२] प्रस्तुत वराह मूर्ति में, इसी छोटी माला वाली पद्धति का अनुसरण किया गया है। फूलों की बनावट भी कुषाणकालीन है।

(३) अन्य कुषाण अलंकरण—शिला लेख तथा सूर्य मूर्ति के अतिरिक्त निम्नांकित बातें भी इस मूर्ति में देखी जा सकती हैं जो स्पष्टतया कुषाण काल की हैं।

(क) मूर्तियों के शरीर और चेहरे की बनावट।

(ख) वराह का कायबंधन या फेंट।

(ग) उपासक की वेश भूषा।

(घ) अध लेटे हुए भद्र पुरुष की पगड़ी।[३]

(ङ) पर्वत[४] और वृक्ष का अंकन।

अब तक मीमांसा से यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत शिलापट्ट कुषाण काल का ही है और इसीलिए तत्कालीन वैष्णव संप्रदाय के अध्ययन के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसकी प्राप्ति वराह मूर्ति के अस्तित्व को लगभग दो सौ वर्ष पूर्व और पीछे ले जाती है।

[१] मथुरा मूर्ति संख्या ३४. २४८७
[२] वही, संख्याः १७. १३२५
[३] मिलाइये, वी. ए. स्मिथ, जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टिकिटीज़ फ्राम मथुरा, संख्या ६४
[४] वही, फलक संख्या ६३

संक्षिप्त शब्दानुक्रमणिका